पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धान्त

लेखक

डा० केसरीनारायण शुक्ल, एम्० ए०, डी० लिट्०,

प्रोफेसर, मास्को विश्वविद्यालय,

प्राच्य भाषा इंस्टिट्यूट,

मास्को

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड संस

चौक, वाराणसी

अनुक्रम

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक में पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धान्तों से संबंधित कतिपय प्राचीन आचार्यों के साहित्य-सिद्धांतों की संक्षिप्त चर्चा की गई है। इसमें अरस्तू से लेकर 'मध्ययुग' तक के प्रमुख सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है।

मध्ययुग के बाद या मध्य युग से प्रत्येक योरुपीय देश के समीक्षा-सिद्धांतों का अपना निजी मौलिक विकास आरम्भ हो चला, किन्तु उसके पहले ये ग्रीक और रोमन आचार्य सर्वमान्य थे और इनका सभी देशों पर व्यापक प्रभाव था। सभी योरुपीय देशों ने इनको समान सांस्कृतिक उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त और स्वीकार किया। मध्ययुग के बाद से इन योरुपीय देशों के आलोचनात्मक साहित्य का स्वतन्त्र विकास हुआ यद्यपि उसका एक दूसरे देश पर प्रभाव पड़ता रहा। इसी सांस्कृतिक एकता को ध्यान में रखकर प्रस्तुत पुस्तक में प्लेटो, अरस्तू, होरेस, लॉनजाइनस तथा मध्ययुग की आलोचनात्मक उपलब्धियों पर विचार किया गया है और प्लेटो से आरम्भ कर 'मध्ययुग' पर इसकी समाप्ति की गई है।

आरम्भ में समग्र पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धान्त का परिचय प्रस्तुत करने का विचार था। किन्तु कई कारणों से ऐसा न हो सका। फलतः 'मध्ययुग' तक का संक्षिप्त विवरण इस पुस्तक में प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि इस पुस्तक से हिन्दी के पाठकों को पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धान्त का यत्किंचित् परिचय भी प्राप्त हो गया तो लेखक अपने श्रम को विफल न समझेगा।

प्रस्तुत पुस्तक काशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र की सतत प्रेरणा का ही परिणाम है। जो कुछ भी लिखा जा सका है उसमें उन्हीं की प्रेरणा है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के अँगरेजी विभाग के असिस्टेंट प्रोफेसर श्री नरेशचन्द्र जी ने 'मध्ययुग' संबंधी साहित्यिक सामग्री के एकत्र करने में मेरी बड़ी सहायता की। अपने निजी पुस्तकालय से उन्होंने कई पुस्तकें मुझे

दीं, साथ ही कई सुझाव भी दिए। समय-असमय जब कभी मैं उनसे मिला वे बड़ी प्रसन्नता के साथ सहायता के लिए तत्पर रहे। लेखक इसके लिए उनका अत्यन्त कृतज्ञ है।

काशी विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर डा० रामअवध द्विवेदी, एम० ए०, डी० लिट्० ने अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी इस पुस्तक की भूमिका लिखने का जो कष्ट उठाया है, लेखक उसके लिए उनका बड़ा आभारी है।

केसरीनारायण शुक्ल
(प्रोफेसर, मास्को विश्वविद्यालय,
प्राच्यभाषा इंस्टिट्यूट)

मास्को विश्वविद्यालय
मास्को

भूमिका

ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी में यूनानी सभ्यता तथा शक्ति का चरम उत्कर्ष हुआ। एथेंस का प्रजातंत्र विकसित हुआ तथा विदेशियों के साथ युद्ध में उसे सफलता मिली। साहित्य के क्षेत्र में आश्चर्यजनक कार्य हुआ। होमर और हिसियड अपने महाकाव्य पूर्ववर्ती काल में लिख चुके थे और प्रत्येक यूनानी को इन कृतियों पर गर्व था। सैफो, पिंडार तथा अनेक कवि उत्कृष्ट कोटि के प्रगीतकों की सर्जना करके अपनी कीर्ति अमर बना चुके थे। तत्पश्चात् एथेंस के तीन महाकवियों ने उन ट्रेजिडियों की रचना की जिनकी तुलना में आधुनिक युग के अधिकांश नाटक तुच्छ और हेय प्रतीत होते हैं। एथेंस-निवासी होमर के महाकाव्यों से भी अधिक इन नाटकों को महत्त्व प्रदान करते थे। अरस्तू के काव्य-शास्त्र के अन्तिम अध्यायों में यह बात सिद्ध की गई है कि ट्रेजिडी में महाकाव्य की अपेक्षा अधिक सौष्ठव तथा प्रभावोत्पादकता रहती है। एस्किलस, साफोक्लीज एवं युरूपिडीज के दुःखान्त नाटकों के प्रेक्षण के उपरान्त ही इस प्रकार की स्थापना सम्भव हो सकी। इसी शताब्दी में सोफिस्ट प्राध्यापकों ने तर्क की नवीन पद्धति तथा भाषा की नवीन शैली का प्रचलन किया और सुकरात ने अपने देशवासियों के समक्ष अपना चमत्कारपूर्ण तर्क एवं नैतिकतावादी दर्शन प्रस्तुत किया।

ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी में अवनति और पतन के चिह्न परिलक्षित होने लगे। अनेक वर्षों तक युद्ध में संलग्न रहने के कारण एथेंस की शक्ति क्षीण तथा उसका शासन-तंत्र शिथिल होने लगा था। नगर-निवासियों का चारित्रिक पतन भी प्रारम्भ हो गया था और उच्च उद्देश्यों को छोड़कर वे अनियंत्रित जीवन और भोगलिप्सा के वशीभूत हो गए थे। इसी अधःपतन के काल में सुकरात के प्रिय शिष्य प्लेटो ने अपना चिन्तन-कार्य संपादित किया। अपने गुरु से उसको तीन विशेषताएँ प्राप्त हुई थीं—१. विशुद्ध ज्ञान के प्रति आकर्षण, २. वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकता पर आग्रह, ३. द्वंद्वात्मक तर्क-पद्धति।

प्लेटो के लेखों को समझने के लिए इन तीन तथ्यों को निरन्तर ध्यान में रखना अनिवार्य है। प्लेटो को उच्च कोटि की काव्यात्मक प्रतिभा मिली थी, किन्तु इन्हीं नैतिक और दार्शनिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर उसने कवि की भर्त्सना की और आदर्श प्रजातंत्र से उसको निष्कासित करने का विचार किया। काव्य को वह घातक मानता था, क्योंकि उससे ज्ञान पर पर्दा पड़ता है तथा भावनाओं के नियंत्रण में बाधा उत्पन्न होती है। इसी विश्वास को सिद्ध करने के लिए उसने विभिन्न प्रमाणों का सहारा लिया है। वह मानता था कि उसके प्रिय देश एथेंस की अवनति के मूल में अंशतः उसके देशवासियों का कविता के प्रति मोह कारण-रूप में विद्यमान है। अतः वह इस कारण को मिटाकर लोक-जीवन का परिष्कार करना चाहता था। प्लेटो ने साहित्य के विषय में कोई व्यवस्थित निबंध नहीं लिखा है और न वह साहित्यिक चिन्तन को कहीं प्रमुखता देता है, किन्तु उसके बिखरे हुए साहित्यिक विचारों से भावी युगों को प्रेरणा मिली। वह साहित्यशास्त्री नहीं था किन्तु उसी के छिटफुट विचारों के आधार पर योरुपीय साहित्यिक चिन्तन का भव्य प्रासाद खड़ा किया गया।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने सर्वप्रथम साहित्य और कला की सुनिश्चित और क्रमबद्ध व्याख्या योरुपीय जगत् को भेंट की। उसका दृष्टिकोण अपने गुरु के दृष्टिकोण से भिन्न था। प्लेटो के विचारों में अध्यात्म, तर्क और नैतिक अभिप्राय घुल-मिल गए हैं। अरस्तू ने वैज्ञानिक अनुसंधान की परिपाटी अपनाई और प्लेटो के विशुद्ध नीतिपरक दृष्टिकोण को छोड़कर अपने लिए एक नवीन मार्ग निर्धारित किया। वह मानववादी था। अतएव उसने समग्र मानवजीवन को कला का विषय माना। उसका कथन है कि कविता जीवन की अनुकृति है। किन्तु 'जीवन' और 'अनुकृति' का यहाँ विशेष अर्थ है। जीवन से यहाँ अभिप्राय केवल बाह्य रूप और उपकरणों से नहीं है अपितु विचारों, भावनाओं तथा उनसे उत्पन्न आन्तरिक सम्बन्धों से भी है। अरस्तू जीवन की कल्पना केवल उसके जड़-रूप में नहीं करता, वह उसको क्रिया और अनुभव के सन्दर्भ में देखता है। यही वास्तविक मानवजीवन है और इसी से साहित्य को सामग्री मिलती है। अनुकृति को भी अरस्तू ने एक नवीन परिभाषा

प्रदान की। प्लेटो ने उसे प्रतिकृति के रूप में ग्रहण किया था और इसीलिए उसे तुच्छ बताया। अरस्तू ने उसे एक विशिष्ट प्रक्रिया माना, जिसके द्वारा यथार्थ को सार्वभौमिकता प्राप्त होती है। अनुकरण द्वारा कवि विषय-वस्तु को नवीन अभिप्राय, अर्थ और मूल्य से समन्वित करता है। काव्य के आकर्षण का यही रहस्य है। आनेवाले युगों में अरस्तू की इस व्याख्या को बहुत महत्त्व दिया गया। सर्जनात्मक कल्पना का विवेचन यहीं से प्रारम्भ होता है। अरस्तू ने ट्रेजिडी के सम्बन्ध में अपने विचार विस्तृत रूप से प्रस्तुत किए हैं। ट्रेजिडी का स्वरूप कैसा हो, उसका निर्माण किन सिद्धांतों पर किया जाय तथा उसमें सन्निविष्ट दुःखान्त घटनाओं से शान्ति और आनन्द की उपलब्धि किस प्रकार होती है, इन गम्भीर विषयों पर विचार व्यक्त किए गए हैं। **काव्यशास्त्र** में महाकाव्य, सुखान्त नाटक, काव्यशैली आदि पर भी विचार किया गया है। यह ग्रन्थ योरुपीय आलोचनाशास्त्र का सर्वाधिक मान्य तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

एथेंस की अवनति का क्रम चलता रहा। अरस्तू अपने नगरवासियों के रोष से बचने के लिए स्वयं देश के बाहर चला गया। अन्ततोगत्वा एथेंस अपनी प्रतिस्पर्धी शक्तियों द्वारा विजित हुआ और उसकी महत्ता सदा के लिए नष्ट हो गई। प्रायः दो सौ वर्षों तक एथेंस विद्या, कला और सभ्यता का केन्द्र था, किन्तु उसके पतन के बाद अनेक स्थानों पर फैलकर विद्वान् अपना कार्य करने लगे। इस प्रकार ईसा पूर्व तीसरी और दूसरी शताब्दी में अध्ययन और अध्यापन के विविध केन्द्र थे जिनमें सर्वप्रमुख था अलेक्जेंड्रिया का नगर। इसीलिए इन दो शताब्दियों को अलेक्जेंड्रियन युग कहते हैं। अध्ययन और चिन्तन का कार्य निरन्तर होता रहा किन्तु उस युग के विद्वानों की उपलब्धियाँ और निष्कर्षों का ठीक पता हमें नहीं लगता; क्योंकि इस काल के अधिकांश लेख विनष्ट हो गए हैं। तब भी इतना तो ज्ञात ही है कि व्याकरण, भाषण-कला, भाषा-विज्ञान आदि में विशेष उन्नति हुई तथा कतिपय नवीन काव्य-रूपों की भी सृष्टि हुई। यूनानी क्लासिकीय नियमों का प्रतिबन्ध अब कुछ ढीला पड़ने लगा। सबसे बड़ी बात यह है कि यह अलेक्जेंड्रियन युग, जिसके एक सिरे पर बीता हुआ यूनानी काल है और दूसरे सिरे पर आनेवाला रोमन काल, एक सेतु

का कार्य करता है। इसी से होकर यूनानी प्रभाव रोमन जीवन और विचारों में प्रविष्ट हुआ।

रोमन समीक्षा का अभ्युदय ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ। शती के पूर्वार्ध में सिसरो ने भाषण-कला की शिक्षा के सम्बन्ध में गद्यशैली का विवेचन किया। उसके मतानुसार शैली कम से कम तीन प्रकार की होती है। सरल शैली में अध्यापन का कार्य सम्पन्न होता है। मध्यम शैली मनोविनोद प्रदान करती है तथा उच्च शैली प्रभावोत्पादन के निमित्त उपयोग में लाई जाती है। शैली में वक्ता के चरित्र, विषय तथा परिस्थिति के अनुकूल चढ़ाव-उतार आवश्यक है।

सिसरो ने आदर्श रूप में प्राचीन यूनानी परिपाटी को अपनाया और भाषाशास्त्र के अध्येता-वर्ग को उसने आदेश दिया कि वह यूनानी नियमों तथा व्यवहारों का अनवरत परिशीलन करे। उसी शताब्दी के उत्तरार्ध में होरेस ने काव्य के क्षेत्र में यूनानी नियमों और आदर्शों को प्रमुखता प्रदान की, यद्यपि उसपर किसी अंश में अलेक्जेंड्रियन विद्वानों की विचार-सरणी का प्रभाव भी पड़ा था। उसने बार-बार यह आदेश दिया कि उसके देश और युग के कवि यूनानी आदर्शों को आत्मसात् करें। उसका सुविख्यात कथन है—"यूनानी आदर्शों का दिन में अध्ययन करो और रात्रि में उनपर चिन्तन करो।" उसकी प्रसिद्ध उक्ति है—"रोम की वंशी में थीब्स के प्राचीन स्वर भरिए।" फलतः होरेस के जगद्विख्यात निबंध **आर्स-पोयटिका** में मुख्य रूप से प्राचीन यूनानी सिद्धान्तों का नवीन ढंग से प्रतिपादन हुआ है। यूनानी प्रतिभा दर्शन और कलात्मक सौंदर्य को प्राथमिकता प्रदान करती थी किन्तु रोमन दृष्टिकोण में उपयोगितावाद का पुट है। अतः होरेस ने जो कुछ लिखा है वह अपने देशवासियों को उत्तम काव्यसर्जना की शिक्षा देने के प्रयोजन से ही लिखा है। बातें पुरानी हैं, किन्तु नवीन आग्रह के साथ प्रस्तुत की गई हैं। कला में अन्विति पर विशेष बल दिया गया है तथा शैली-निर्माण और काव्यसौष्ठव के लिए सम्यक् प्रयत्न और सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता पर विस्तृत रीति से लिखा गया है। कविकर्म कष्टसाध्य है और कवि के लिए प्रयास उसी प्रकार आवश्यक है जैसे ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा। कवि कल्पना और यथार्थ को मिलाकर नवीन सृष्टि करता है। होरेस ने दुःखान्त

और सुखान्त नाटकों के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें लिखी ह। उनमें कुछ तो नई हैं किन्तु अधिकांश अरस्तू के सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति अथवा व्याख्या मात्र हैं। यूरोपीय समीक्षा पर होरेस का प्रभाव अत्यन्त दीर्घकालव्यापी सिद्ध हुआ है। १८वीं शती के अन्त तक उसके विचारों को आदरपूर्वक अपनाया गया और आज भी उसका प्रभाव लुप्त नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ अब भी जब हम काव्य के उद्देश्य और प्रयोजन के सम्बन्ध में विचार करते हैं तब अनायास होरेस की यह उक्ति हमारे सामने आती है कि काव्य शिक्षा और अनुरंजन दोनों के निमित्त लिखा जाता है और ये दोनों प्रयोजन अभेद्य रूप से उसमें मिले रहते हैं।

बहुत दिनों तक यह धारणा थी कि लॉनजाइनस तीसरी शती ईसवी में एथेंस और पालविरा में निवास करता था, किन्तु अब अधिकांश विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँच गए हैं कि वह प्रथम शताब्दी ईसवी का विद्वान् और विचारक था। उसका निबंध अपने ढंग का अद्वितीय लेख है जिसमें परम्परागत चिन्तन-परिपाटी को छोड़कर लेखक ने नवीन सिद्धान्तों की स्थापना और व्याख्या उपस्थित की है। लॉनजाइनस भाषणशास्त्र का प्राध्यापक था और एक अन्य लेखक के भाषणशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ की त्रुटियों को सुधारने के लिए ही उसने अपना प्रसिद्ध निबंध लिखा था। अतएव विषय पुराना और ऐसा है जिस पर दीर्घकाल से लोग लिखते आए थे किन्तु इस पुराने विषय पर लॉनजाइनस ने बिलकुल नये ढंग से लिखा। उसके विचारों में क्लासिकीय एवं रूमानी विचारों का सम्मिश्रण है तथा प्लेटो, अरस्तू, होरेस और अनेक अन्य विचारकों का प्रभाव परिलक्षित है। वह ग्रीक, लैटिन और हिब्रू का प्रकांड पंडित था। उसने इन सभी भाषाओं से उद्धरण और उदाहरण दिए हैं। इन कारणों से लॉनजाइनस का उदात्तता-सम्बन्धी निबंध अत्यन्त गम्भीर और चमत्कारपूर्ण हो गया है।

लॉनजाइनस की सबसे बड़ी महत्ता इस बात में है कि उसने कला के एक नवीन उद्देश्य की ओर संकेत किया। उसका मत है कि कला न तो केवल शिक्षा और न केवल मनोरंजन प्रदान करती है वरन् वह श्रोता अथवा द्रष्टा के मन में अभिनव आह्लाद और आनंद की सृष्टि करती है। उदात्त की कल्पना लॉनजाइनस ने उस वैशिष्ट्य के रूप में की जिससे उस आह्लाद की सृष्टि और

उस आनंद की प्राप्ति होती है। उदात्त की सर्जना पाँच उपकरणों से होती है, जिनमें से दो का सम्बन्ध कलावस्तु से और तीन का रूप से है। लॉनजाइनस ने इन पाँच तत्त्वों की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है और उदात्त की अन्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। उसका प्रसिद्ध निबंध बहुत दिनों तक अप्राप्य था। १६वीं शताब्दी में प्राप्त होने के उपरान्त इस पर विचार किया गया और १७वीं शताब्दी में ब्वालो ने उसका अनवाद फ्रेंच भाषा में किया। तब से आज तक लॉनजाइनस का यह ग्रंथ योरोपीय समीक्षा के शीर्षस्थ ग्रन्थों में माना जाता है।

आगे चलकर ईसाई धर्म का प्रसार हुआ और उत्तर से आनेवाली बर्बर जातियों ने दक्षिण और पश्चिम यूरोप के सभ्य देशों को आक्रान्त किया। इस प्रकार उस मध्ययुग का प्रारम्भ हुआ जिसकी अवधि प्राय: एक हजार वर्ष की थी। इस दीर्घकाल में साहित्यिक समीक्षा का अधिक विकास नहीं हो सका। ईसाई धर्म के सन्त और पादरी साहित्य का विरोध कर रहे थे। उनका विश्वास था कि कला और साहित्य से अनैतिकता बढ़ती है और इस प्रकार धार्मिक जीवन कठिन हो जाता है। सन्त आगस्टाइन के संस्मरणों से इस विरोध का अच्छा पता चलता है। दार्शनिकों ने भी संतों की ही भाँति साहित्य की अव-हेलना की। दूसरी बात यह है कि मध्ययुग में नवीन लोकभाषाओं का अभ्युदय और विकास हो रहा था, जो बहुत दिनों तक सम्यक् परिष्कार के अभाव में साहित्यिक प्रयोग के उपयुक्त नहीं थीं। १२वीं शताब्दी तक परिस्थिति कुछ अनुकूल हुई, ठीक उसी समय दांते का आविर्भाव हुआ।

दांते जितना बड़ा कवि था उतना ही बड़ा आलोचक भी। यूरोप की विभिन्न लोकभाषाओं का सर्वेक्षण और वर्गीकरण उसके ज्ञान और सुरुचि का ज्वलंत प्रमाण है। वह शब्दों की आत्मा पहचानता था। उसने भाषा के गुणों के बारे में अधिकारपूर्वक लिखा है। उसके काल तक लोकभाषाओं का विकास अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। दांते ने उस विकसित अवस्था में उनकी साहित्यिक क्षमता के सम्बन्ध में अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। गद्यशैली और छन्दयोजना सम्बन्धी दांते के विचार भी उसकी सुरुचि के परिचायक हैं। इसी भाँति कविता के विषय पर भी उसने कुछ अत्यन्त नवीन बातें कही हैं। रूपक और प्रतीक का काव्य में क्या स्थान है, इसका सुन्दर

विवेचन उसने प्रस्तुत किया है। तर्क और दर्शन में दांते अरस्तू का अनुयायी था, किन्तु उसकी पारमार्थिक दृष्टि और रहस्यभावना प्लेटो की याद दिलाती है। सत्य तो यह है कि दांते की प्रतिभा नितान्त मौलिक थी। किसी अन्य से उसकी तुलना कर ही नहीं सकते।

सन् १४५३ ई० में जब कुस्तुंतुनिया पर तुर्कों का अधिकार हुआ तब मध्ययुग का अवसान हुआ। इसके पूर्व ही परिवर्तन के चिह्न प्रकट होने लगे थे। प्राचीन यूनानी और रोमन ग्रन्थों की खोज हो रही थी और विद्वान् उनके अध्ययन में संलग्न थे। मानववादी विचारक अपने नवीन दर्शन का निर्माण कर रहे थे, जिसमें मनुष्य और उसकी तर्क-बुद्धि का विशेष स्थान था। इस प्रकार मध्य-युग का अन्त हुआ और नंव-जागरण का युग प्रारम्भ हुआ।

प्राचीन और मध्ययुगीन योरोपीय समीक्षा का ज्ञान अनेक कारणों से वांछ-नीय है। प्लेटो, अरस्तू, होरेस, लॉनजाइनस, दांते प्रभृति विचारकों ने विस्तृत अनुभव तथा गहन चिन्तन के उपरान्त ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिनकी उपयोगिता सर्वकालीन और शाश्वत है। युगों के बदलते रहने पर भी जिन सारभूत तत्त्वों की ओर उन्होंने काव्य-प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया उनका महत्त्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा। आधुनिक काव्य और आलोचना का मूल इन्हीं पूर्वकालीन विचारों में स्थित है। प्रसिद्ध विद्वान् सेंट्सबरी ने लिखा है कि जो काव्यरसिक आधुनिक और प्राचीन आलोचना-सिद्धान्तों का आधिकारिक ज्ञान रखता है और मध्ययुग के सिद्धान्तों से भी परिचित है, साहित्य के रहस्य की कुंजी उसी के हाथ है। हिन्दी के विद्वानों और प्रेमियों के लिए भी इन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का ज्ञान आज परम आवश्यक हो गया है। हम सभ्य संसार के अन्य भागों से अलग नहीं रह सकते। चिन्तन और अध्ययन के क्षेत्र में अपने और पराये, प्राच्य और पाश्चात्य, का भेद मिट जाना चाहिए। उच्च और मौलिक विचार अपना सार्वकालिक और सार्वभौमिक वैशिष्ट्य रखते हैं। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य-कला-सिद्धांतों के ज्ञान से हमारे लिए तुलनात्मक अध्ययन की असीम सम्भावना उपलब्ध होती है। इन विदेशी मतों के प्रकाश में जब हम अपने सिद्धान्तों और कृतियों को देखते हैं तब उनका नवीन अर्थ और रूप प्रकट होता है। हिन्दी में आधुनिक आलोचनाशास्त्र का एक

अभिनव रूप सामने आ रहा है। इस नवीन आलोचना-शास्त्र का स्वरूप विभिन्न पद्धतियों को आत्मसात् करके ही प्रत्यक्ष हो रहा है।

डा० केसरीनारायण शुक्ल ने इस पुस्तक को लिखकर स्तुत्य कार्य किया है। हिन्दी में अपने ढंग का यह बिलकुल नया ग्रंथ है। लेखक ने प्रमुख विचारकों के विशिष्ट सिद्धान्तों का सुन्दर और सुस्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि मूल ग्रन्थों के आधार पर ही व्याख्याएँ लिखी गई हैं। भाषा सरल और शैली स्पष्ट है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि साहित्य-रसिक और अध्येता इस पुस्तक का स्वागत करेंगे।

रामअयध द्विवेदी

पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धान्त

यूनान पाश्चात्य विचारधारा और संस्कृति का पालना माना गया है। समस्त योरुप उसके इस ऋण को मुक्त कंठ से स्वीकार करता है, इसे उत्तराधिकार में मिली अपनी सांस्कृतिक सम्पत्ति समझता है और इस पर गर्वित होता है। सम्प्रति विकास की लड़ी खोजता हुआ वह तब तक नहीं संतुष्ट होता जब तक उसका संबंध यूनानी विचारधारा से नहीं जोड़ देता, जिसे वह आरम्भिक कड़ी या मूल स्रोत और उद्गम मानता है। इसलिए यूनान योरुपीय संस्कृति के प्रत्येक अंग—राज्य-विधान, दर्शनशास्त्र, दंडनीति, साहित्य—के इतिहास का प्रथम सर्ग ठहरता है। इस प्रथम सर्ग के भी कई स्तर और शाखाएँ हैं, क्योंकि योरुपीय संस्कृति का प्रथम सर्ग होने पर भी यूनान की संस्कृति का अपना विकास कई शताब्दियों के बीच पल्लवित और पुष्पित हुआ है। अनावश्यक विस्तार को बचाते हुए कहा जा सकता है कि प्लेटो और अरस्तू इस संस्कृति के दो महान् स्तम्भ एवं आचार्य माने गए हैं, जिनकी व्याख्या साहित्य, दर्शन आदि सभी विषयों पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसलिए इन्हीं दार्शनिकों के व्याख्यानों द्वारा प्रस्तुत साहित्यिक विवेचन का आरम्भ सुगम एवं सुसंगत होगा।

प्लेटो

प्लेटो का योरुपीय विचारधारा पर जितना गम्भीर और व्यापक प्रभाव पड़ा है उतना कदाचित् ही किसी अन्य विचारक का पड़ा हो। फिर भी उसने जो कुछ लिखा है उसमें मुख्य वक्ता या प्रवक्ता उसका गुरु सुकरात है। उसके लिखे संवादों में सुकरात ही मुख्य प्रश्नकर्त्ता है और वही प्रश्नों का विस्तृत समाधान भी प्रस्तुत करता है। गुरु-शिष्य का ऐसा संबंध विश्व के इतिहास में बहुत कम मिलेगा। कहा जा सकता है कि सुकरात ने कुछ नहीं लिखा और प्लेटो ने कुछ नहीं कहा। वह अपने गुरु के विचारों का अभिव्यंजक बनकर ही संतुष्ट रहा। यद्यपि इन संवादों में सुकरात ही बोल रहा है तथापि यह आवश्यक नहीं कि विचार भी उसी के हों। विद्वानों में इस विषय पर पर्याप्त मतभेद है और यह निश्चित नहीं हो सका है कि इन संवादों के कितने विचार गुरु के हैं और कितने शिष्य के।

प्लेटो की तत्त्वचिन्ता का प्रभाव केवल दर्शन के क्षेत्र तक ही परिमित नहीं रहा। उसकी विचारधारा से जीवन और समाज के सभी अंग आप्लावित हुए। दर्शन के अतिरिक्त तर्कशास्त्र, साहित्य, समाज-संघटन, शिक्षा, राजनीति आदि सभी उसके ऋणी हैं। इसका कारण उसका असाधारण व्यक्तित्व है। यूनान के (इस्थमियन) खेलों में उसे कुश्ती में विजय-पुरस्कार मिला था, उसने दु:खान्त नाटक और कविताएँ भी लिखी थीं तथा उसे राजनीति में भी पूरी दिलचस्पी थी। यदि वह (पाँचवीं शती के अंतिम वर्षों में प्रचलित) तत्कालीन प्रजातंत्र की त्रुटियों से असंतुष्ट होकर उन्हें सुधारने की इच्छा से उससे अलग हटकर दार्शनिक न बन जाता तो वह अवश्यमेव राजनीतिक नेता होता। शिवत्व या कल्याण की भावना उसके व्यक्तित्व और उसके जीवनदर्शन को सदैव अनुप्राणित करती रही। आदर्शवादी अंतर्दृष्टि उसकी दूसरी विशेषता है।

प्लेटो के काव्य या साहित्य संबंधी विचारों पर इन दोनों भावनाओं की पूरी-पूरी छाया है। उसने काव्य की आदर्शवादी व्याख्या प्रस्तुत की और उसका

संबंध जोड़ दिया नैतिकता के चरम लक्ष्य से। सत्साहित्य की परख और जाँच के लिए उसने शिवत्व की भावना को उसकी कसौटी बनाया। अस्तु।

प्लेटो की इन मूलभूत भावनाओं की विस्तृत व्याख्या के पहले काव्यसृष्टि और काव्यस्वरूप संबंधी उसके विचारों से परिचित हो जाना चाहिए । प्लेटो काव्यसृष्टि को अभ्यासजन्य या कौशलजन्य नहीं मानता, प्रत्युत इसे दैवी प्रेरणा या स्फुरण का परिणाम कहता है । इस संबंध में वह चुम्बक-प्रस्तर का दृष्टांत उपस्थित करता है। चुम्बक केवल लोहे को ही अपनी ओर नहीं खींचता प्रत्युत लोहे को भी आकर्षण-शक्ति प्रदान करता है, जिससे वह दूसरे लोहे को भी खींचता है। इस प्रकार चुम्बक की आकर्षण-शक्ति (लोहे के छल्लों द्वारा) शृंखला की अंतिम कड़ी तक को मिल जाती है। इसी प्रकार कुछ को प्रेरणा या स्फुरणा काव्यदेवी (Muse) से मिलती है और दूसरों को इन दैवी-प्रेरणा-प्राप्त व्यक्तियों से । इस प्रकार दैवी-प्रेरणा-प्राप्त व्यक्तियों की एक शृंखला बन जाती है । इस प्रकार छल्लों की (प्रत्येक कवि की) कई शृंखलाएँ रहती हैं, जिनकी अंतिम कड़ी दर्शक (या पाठक) हैं, बीच की कड़ी व्याख्याता (या आलोचक) और आरम्भ की कड़ी कवि है। किसी को एक शृंखला से प्रेरणा प्राप्त होती है और किसी को दूसरी से। यही कारण है कि एक कवि की कृतियाँ किसी को तो अनुरंजित करती हैं और किसी को नहीं । व्याख्याता को भी एक कवि की रचनाओं की व्याख्या करने में उत्साह होता है और दूसरे की रचनाओं के प्रति उत्साह नहीं रहता । यदि यह दैवी प्रेरणा न होती, केवल कला के अधीन रहने-वाली स्फुरणा होती तो व्याख्याता समान रूप से सभी की रचनाओं की सुन्दर व्याख्या कर सकता। प्लेटो का (छल्लों की) शृंखला का सिद्धान्त संक्षेप में यही है ।

कवि काव्य-रचना के क्षणों में अपने आपे में नहीं रहता, उसके ऊपर काव्य-देवी का अधिकार रहता है। जब तक उसे दैवी प्रेरणा नहीं प्राप्त होती और वह अपने दिमाग से बाहर नहीं होता, तर्कशक्ति उसके साथ रहती है, तब तक कवि काव्यरचना और भविष्य-कथन में असमर्थ है । कवि की कला अत्यन्त सूक्ष्म, पंखोंवाली (ऊपर उड़नेवाली) और अत्यन्त पवित्र है। कवि काव्यदेवी

के उपवनों और घाटियों के मधुवर्षी फव्वारों से अपनी कविताएँ प्राप्त करते हैं और हमारे पास मधु-संग्रही मक्खियों के समान लाते हैं। कवि भी पंखों-वाला जीव है। काव्यदेवी से कवि को जितना वरदान मिलता है उसी के अनु-रूप वह महाकाव्य या गीत लिखता है, किन्तु दूसरे प्रकार की काव्यरचना में वह असमर्थ रहता है। इसी से महाकाव्य के रचयिता—अच्छे कवि—अपनी अच्छी कविताएँ कला के कारण नहीं करते, प्रत्युत इसलिए कर पाते हैं कि उन्हें दैवी प्रेरणा प्राप्त है और वे उसके (काव्यदेवी के) वश में हैं। अच्छे प्रगीतकारों के विषय में भी यही बात लागू है और सच है।

काव्यरचना के क्षणों में कवियों को तर्कशक्ति और सामान्य मानसिक दशा से वंचित करने में ईश्वर का विशेष उद्देश्य है। इन व्यक्तियों को उनकी तर्कशक्ति से वंचित कर ईश्वर उनको भविष्यत्कथन और दैवी मन्तव्यों में अपना सहायक बनाता है, जिससे जब हम उनको सुनें तो जान जायँ कि इन उच्च तथा उदार शब्दों के (सच्चे) वक्ता वे (कवि) नहीं हैं—क्योंकि ये (वचन) उनकी बुद्धि द्वारा प्रसूत नहीं हैं—प्रत्युत ईश्वर स्वयं बोल रहा है और मनुष्यों के मुख द्वारा हमें संबोधित कर रहा है। चाल्सीडिया का टिनिकस (Tynnichus the Chalcidian) इसका उदाहरण है। उसकी कोई कविता ऐसी नहीं है जिसे लोग याद रखने के योग्य समझें। फिर भी उसने सबसे सुन्दर प्रगीत कला की सहायता के बिना रचा। उसका कहना है कि किसी काव्यदेवी ने इसका आविष्कार या निर्माण किया। इस प्रकार ईश्वर स्पष्ट रूप से दिखला देता है कि ये सुंदर कविताएँ न मानवी हैं और न मनुष्य की कृतियाँ हैं प्रत्युत दैवी हैं और ईश्वर-प्रसूत हैं, और (यह भी कि) कवि देवताओं के व्याख्याता (होने) के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। प्रत्येक कवि उस दैवी शक्ति के अधीन है जो उस पर हावी है। इसी (तथ्य) को स्पष्ट करने के लिए ईश्वर ने जान-बूझकर अत्यन्त तुच्छ कवि के माध्यम से अप्रतिम सौंदर्य से पूर्ण गीत कहलाया। इस प्रकार अच्छे कवि दैवी सहायता से उन तथ्यों की व्याख्या करते हैं जो उन्हें देवताओं से प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार कवि पहला व्याख्याकार हुआ और कवि की व्याख्या करने-वाला प्रवक्ता व्याख्याता का व्याख्याता हुआ। यह व्याख्याता का व्याख्याता

भी दैवी प्रेरणा के अधीन है। कवि के समान यह भी अपना कार्य कला या विद्या से सम्पन्न नहीं करता, प्रत्युत दैवी शक्ति से प्रेरणा या स्फुरण प्राप्त करके ही अपने काम में सफलता प्राप्त करता है। भाषण या व्याख्या के क्षणों में (कवि के समान) वह भी अपने आपे में नहीं रहता और उसकी आत्मा उन घटनाओं में योग देती प्रतीत होती है जिनका वह वर्णन कर रहा है—वे घटनाएँ चाहे इथाका की हों चाहे ट्राय की—और वह दर्शकों में भी वही भाव उत्पन्न करता है। प्लेटो, शृंखला-सिद्धान्त की चर्चा करते हुए, बतला चुका है कि काव्यदेवी द्वारा लटकाई हुई दैवी प्रेरणा की इस लड़ी में कवि सबसे पहले है, व्याख्याता बीच में है और पाठक अन्त में है, तथा एक दूसरे से जुड़े होने के कारण उनकी आत्मा को ईश्वरीय प्रेरणा परिचालित करती रहती है। प्लेटो ने यह भी कहा कि पाठक या व्याख्याता को एक कवि की रचना अच्छी लगती है और दूसरे की नहीं। इस पक्षपात का कारण यही है कि प्रत्येक कवि की काव्यदेवी अलग-अलग है और सबकी शृंखलाएँ अलग-अलग लटकती हैं। इसी से एक शृंखला (तथा काव्यदेवी) से संबद्ध पाठक या व्याख्याता को दूसरी शृंखला वाले कवि की रचना पसंद नहीं आती, और उससे उसे कोई प्रेरणा नहीं मिलती।

इस दैवी प्रेरणा के संबंध में प्लेटो एक अन्य स्थान पर कहता है कि "तीसरे, उन लोगों का पागलपन है जिन पर कि काव्यदेवी हावी है, यह उन्माद उन (कवियों) की संवेदनशील और शुद्ध आत्मा को अपने वशीभूत कर लेता है। उसे उद्दीप्त करता है और उसमें 'ओड' (ode) या अन्य काव्य की उत्कट इच्छा भर देता है, और प्राचीनों के दस हजार कार्यकलापों को भव्यता प्रदान कर आनेवाली पीढ़ियों को शिक्षा देता है। किन्तु यदि कोई काव्यदेवी के इस उन्माद को प्राप्त किए बिना यह सोचता हुआ काव्यद्वार के निकट जाता है कि मैं केवल कला के द्वारा अच्छा कवि हो जाऊँगा तो प्रभावहीन होता है। ऐसे संयमित व्यक्ति का काव्य पागल कवि की तुलना में अपनी सारी चमक-दमक और भव्यता खो देता है।"

प्लेटो यह भी कहता है कि यदि इन कवियों से स्वयं उनके ग्रंथों की व्याख्या करने के लिए कहा जाय तो वे असमर्थ ठहरते हैं। उनसे अच्छी व्याख्या तो

दूसरे कर देते हैं। प्लेटो कहता है कि "इससे मैं तत्काल समझ गया कि कवि अपनी कविताएँ अपने ज्ञान से नहीं प्रत्युत प्रतिभा से रचते हैं और इसलिए कि पैगम्बरों और भविष्य-वक्ताओं (Oracles) की तरह उन्हें ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त है। क्योंकि वे उत्तम वक्तृता देते हुए यह नहीं जानते कि हम क्या कह रहे हैं। मुझे ऐसा लगा कि कवि भी बहुत कुछ वैसी ही दशा (या अनुभूति) को प्राप्त होते हैं।"

इस संबंध में प्लेटो एक अन्य स्थान पर यह कहता है कि "हम लोगों के बीच एक प्राचीन कथा बराबर दुहराई गई है और दूसरों को भी मान्य है कि कवि जब कभी अपने को काव्यदेवी के त्रिशूल पर स्थापित करता है तो वह अपने सही दिमाग में नहीं रहता, और वह उस फव्वारे के सदृश होता है जो अपने उठते हुए जल को स्वच्छंदता से प्रवाहित करता है। चूँकि उसकी कला अनुकरणात्मक है, इसलिए उसे विपरीत पात्रों (Contrasting Characters) के सर्जन द्वारा अपना ही विपर्यय दिखाना पड़ता है, और वह यह नहीं जानता कि इन विपरीत पात्रों में कौन सच बोलता है।"

काव्यसृष्टि के मूल स्रोत को जान लेने के बाद कवि-कर्म और काव्य-स्वरूप के संबंध में भी प्लेटो के विचारों से अवगत हो जाना चाहिए। प्लेटो कवि को अनुकर्ता और काव्य को अनुकरणात्मक मानता है। इस अनुकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए प्लेटो के मुख्य दार्शनिक विचार—(आदर्शवादी) विचार-सिद्धान्त (Theory of ideas)—को अच्छी तरह जान लेना आवश्यक है। वैसे तो यह सिद्धान्त ज्ञान की समस्या को उठाता है किन्तु यह इन्द्रियातीत, परोक्ष और आध्यात्मिक जीवन की उच्चता, सत्यता और स्थायित्व की महत्त्व-पूर्ण बात भी कहता है। संक्षेप में इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

हमें ज्ञान कसे होता है? जिसे हम जानते हैं वह क्या है? संसार में अनेक प्रकार की कुर्सियाँ और मेज हैं। जब हम कोई कुर्सी या मेज देखते हैं तो वास्तव में लकड़ी का टुकड़ा ही देखते हैं। फिर भी हम उसे कुर्सी या मेज कहते हैं, क्योंकि हमें उस विशेष टुकड़े में कुर्सी या मेज की कोटि या जाति में मिलनेवाली कतिपय विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। प्लेटो ने इस अर्थ में कोटि या जाति के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया है वह 'आइडस' (Eidos) है

जो अंग्रेजी में 'आइडिया' (विचार) में रूपान्तरित हुआ। किन्तु इसका 'आइडिया' (विचार) के प्रचलित अर्थ से कोई मतलब नहीं है। इसका तात्पर्य 'स्वरूप' (फार्म) से है। दर्शन की आधुनिक भाषा में इसे 'विश्वक' (भावना) (Universal) कहेंगे। कुर्सी या मेज की इस 'विश्वक' (भावना) से, 'आइडिया' से या 'स्वरूप' से, संसार की सभी विशिष्ट कुर्सियाँ और मेजें किसी न किसी तरह संबंधित हैं और इसी संबंध के कारण उनको यह नाम मिलता है। यही बात प्रत्येक स्थूल या सूक्ष्म वस्तु के साथ है। प्रत्येक वस्तु या प्रमेय के पीछे उसका 'आइडिया' या 'स्वरूप' है। सुंदर वस्तु के पीछे सौंदर्य का 'आइडिया' (भावना) या 'स्वरूप' है। हमें किसी वस्तु या घटना का ज्ञान इसीलिए होता है कि हम उस वस्तु या घटना के पीछे रहनेवाले 'आइडिया' या 'स्वरूप' को जानते हैं। हम 'आइडिया', 'स्वरूप' और 'विश्वक' (भावना) को जानते हैं और केवल इन्हीं के माध्यम से हम विशेष को जान पाते हैं।

'स्वरूप' को हम इन्द्रियों के द्वारा नहीं प्रत्युत मन (मानस) के द्वारा जानते हैं। कुर्सी या मेज को तो हम छू सकते हैं किन्तु कुर्सी या मेज के स्वरूप को हम नहीं छू सकते। सौंदर्य, न्याय आदि को हम केवल मानस के द्वारा ही अवगत कर सकते हैं। इस प्रकार 'स्वरूप' या 'आइडिया' (भावना) की कुर्सी किसी भी विशिष्ट कुर्सी से अधिक सच्ची और पूर्ण (कुर्सी) ठहरती है। इसी प्रकार सौंदर्य की भावना किसी भी सुंदर वस्तु से अधिक पूर्ण और सौंदर्यमय हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि विशिष्ट वस्तु से उसका 'आइडिया', 'स्वरूप' या 'भावना' अधिक पूर्ण और इसीलिए अधिक महत्त्वशाली है। इसका अर्थ यह भी हुआ कि 'आइडिया' या 'भावना' का आध्यात्मिक संसार सत्य है, वास्तविक है और तथ्यपूर्ण है और हमारा विशिष्ट वस्तुओं का इन्द्रियसंभूत संसार छाया मात्र है। जो हम देखते हैं वह आभास मात्र है वास्तविकता या तथ्य नहीं, सत्य है उसके पीछे रहनेवाला (मानस) 'स्वरूप'।

इस प्रकार हमारे सामने दों संसार आते हैं। एक तो 'आइडिया' (विचार) या भावना का उच्चतर संसार जो इन्द्रियातीत, पूर्ण और चिरंतन है और. दूसरा इन्द्रियों का निम्न संसार जो आभासित और निकट होते हुए भी सत्य

नहीं है। इस निम्न संसार का महत्त्व इसी में है कि यह हमें 'भावना' के उच्च संसार का संकेत देता है। इन दो संसारों के बीच मनुष्य का लक्ष्य और कर्तव्य स्पष्ट ही है। उसका यह आदर्श होना चाहिए कि वह उच्च, पूर्ण, वास्तविक और चिरंतन संसार में अधिक से अधिक रहे। 'विचारों' के संसार में रहे, आत्मा के संसार में रहे। वह इन्द्रियसंभूत संसार के आभासित होते हुए 'छलावे' में उलझा न रह जाय, प्रत्युत उसके परे जो सत्य किन्तु सूक्ष्म संसार है उसमें विचरण करे, इसलिए उसके जीवन में काव्य आदि का उतना ही महत्त्व होगा जितना 'विचारों' के उच्च आध्यात्मिक संसार से काव्यादि का निकट सम्पर्क होगा, जितना वे उस चिरन्तन संसार का चित्रण करेंगे और जितना वे इस जीवन को शुद्ध, पवित्र और संयमित कर उच्च संसार में प्रविष्ट होने के योग्य बनाने में सहायक होंगे।

इस प्रकार प्लेटो के 'विचारात्मक सिद्धान्त' (Ideal theory) के दो पक्ष हुए। एक ओर तो वह बोध सिद्धान्त है जो यह बतलाता है कि हमें किसी चीज का ज्ञान कैसे होता है, और दूसरी ओर यह 'वास्तविकता का सिद्धान्त' भी है। यह व्यक्तियों को उनकी (संसार-संबंधी) भावना के अनुसार दो दलों में विभक्त कर देता है—एक दल परोक्ष, चिरन्तन संसार की सत्ता में विश्वास रखता है और समझता है कि प्रत्यक्ष संसार उसी की छाया है और उसी से संबंधित होने के कारण महत्त्व रखता है, और दूसरा दल उन लोगों का है जो भौतिक संसार को ही सब कुछ मानते हैं और जिनके निकट 'भावना' का संसार कल्पना मात्र है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह नैतिकता का सिद्धान्त प्रतीत होता है, क्योंकि यह क्षणिक, छायामय, इन्द्रियजन्य संसार की अपेक्षा आध्यात्मिक संसार को श्रेष्ठ बताता है और उसकी प्राप्ति के लिए लोगों को नैतिक, शुद्ध और पवित्र जीवनयापन का संकेत देता है। प्लेटो के विख्यात 'शिवत्व की भावना' (Idea of goodness) के सिद्धान्त के बीज भी इसमें निहित हैं। प्लेटो इसी 'शिवत्व' या कल्याण की कसौटी पर काव्यादि को कसकर खरा या खोटा बताता है।

अब, कवि-कर्म और काव्य के स्वरूप के संबंध में भी जान लेना चाहिए। प्लेटो काव्य को अनुकरणात्मक कला कहता है और कवि को अनुकर्ता बताता

है। जिसका प्रकृति (या सत्य) से सीधा संबंध नहीं है, वह अनुकर्ता या नकल करनेवाला है। इस अनुकरण को बढ़ई और चित्रकार की सहायता से समझाया गया है। चूँकि काव्य अनुकरण है, प्रतिकृति मात्र है, स्वयं वह मूल वस्तु या तथ्य नहीं है, इसलिए वह सत्य के सम्पर्क या प्रकृति के सम्पर्क से दूर है और इसीलिए उसका दर्जा भी नीचा है।

हम लोग उन सब चीजों को एक कोटि में रखते हैं जिन्हें एक ही नाम देते हैं। (जैसे) कुर्सियाँ और मेजें बहुत-सी हैं लेकिन उनका संबंध केवल दो भावनाओं (या स्वरूप) से है——कुर्सी का भावनात्मक स्वरूप और मेज का भावनात्मक स्वरूप। अपने मन में इनकी भावना प्राप्त कर बढ़ई इनका निर्माण करता है और हम उनका उपयोग करते हैं, किन्तु बढ़ई केवल विशिष्ट कुर्सियों का बनानेवाला है, 'कुर्सी की भावना' का जन्मदाता नहीं है। उस 'भावना' का मूल स्रष्टा कोई और ही है, इस प्रकार बढ़ई भी अनुकर्ता ही ठहरा। भावना के स्रष्टा से——जो मूल कर्ता है——कुर्सी की भावना को प्राप्त कर वह उसके अनुरूप कुर्सी या मेज बनाता है। दूसरे शब्दों में बढ़ई अपने मन में प्राप्त 'भावना' का अनुकरण करता है। इस प्रकार बढ़ई की कुर्सी अनुकृति मात्र है; नकली है, असली नहीं। असली कुर्सी तो 'भावना' की है जिसका मूल कर्ता ईश्वर है। इस प्रकार बढ़ई असली कुर्सी नहीं बनाता है। वही (असली) चीज नहीं बनाता, उससे मिलती-जुलती चीज बनाता है। इस प्रकार बढ़ई की कृति सत्य की छाया मात्र ठहरती है।

इसी प्रकार चित्रकार जो कुछ अंकित करता है वह असली वस्तु नहीं, उसकी परछाईं मात्र है। उसकी रचना 'बिम्ब' नहीं 'प्रतिबिम्ब' है। इतना ही नहीं, उसकी रचना 'अनुकृति की अनुकृति' है, क्योंकि वह बढ़ई की बनाई हुई अनुकृति (कुर्सी) की अनुकृति (तस्वीर) बनाता है। इस प्रकार तीन कुर्सियाँ बनीं——एक भावना की कुर्सी, दूसरी बढ़ई की कुर्सी, तीसरी चित्रकार की कुर्सी। इसी प्रकार तीन निर्माता हुए——ईश्वर, बढ़ई और चित्रकार। इनमें मूल कर्ता और असली स्रष्टा ईश्वर है। शेष अनुकर्ता मात्र हैं। प्लेटो कह चुका है कि जिनका प्रकृति (सत्य या भावना) से सीधा संबंध नहीं है वे अनुकर्ता हैं। जो वस्तु दूसरे बनाते हैं उसका वे अनुकरण करते हैं। कवि भी इसी

प्रकार का अनुकर्ता है। वह जिस सत्य या राजा आदि का वर्णन करता है उससे उसका सीधा संबंध या संपर्क नहीं है।

यहीं पर प्लेटो ने सत्य और सत्याभास की समस्या उठाई है। क्या चित्रकार उन वस्तुओं का वैसा ही अंकन करता है जैसी कि वे सचमुच में हैं या जैसी कि वे दिखाई पड़ती हैं। क्या उसका चित्र सत्य की अपेक्षा सत्याभास (या छलावा) का अनुकरण नहीं है। अनुकरण होने के कारण चित्र स्पष्टतः सत्य से बहुत दूर है, अवास्तविक है और अपूर्ण है। वास्तविक पदार्थ से जो उसमें समानता रहती है उसका कारण यह है कि चित्र उस वस्तु-विशेष के एक छोटे से अंश—उसकी झलक (इमेज) या रूप—को अधिकृत कर लेता है। यह आंशिक प्रत्यक्षीकरण (या झलक) उसे सत्यता का आभास प्रदान करता है। वस्तुतः चित्रकार को उस पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता, वह बढ़ई के कार्य-व्यापार का बिना विशेषज्ञ हुए—और इस प्रकार सत्य से दूर रहते हुए—बढ़ई का चित्र बना देता है और यदि चित्र अच्छा हुआ तो बच्चे और सीधे-सादे मनुष्य उस चित्र को दूर से देखकर सचमुच उसे बढ़ई का समझने लगते हैं। वे इस भ्रम में इसलिए पड़ते हैं कि ज्ञान, अज्ञान और अनुकृति में भेद नहीं कर पाते। वस्तुतः चित्रकार की कृति आभास मात्र देती है। वह अनुकृति है और सत्य से दूर है।

कवि भी इसी प्रकार का अनुकर्ता है, मौलिक स्रष्टा नहीं। जिस प्रकार कि चित्रकार बिना बढ़ईगीरी का काम समझे ऐसी चीज बना देता है जो कम समझवालों को (रंग और चेष्टा के मोह में पड़कर) बढ़ई-सा प्रतीत होता है उसी प्रकार होमर से लेकर सभी कवि, गुण (या धर्म) या वर्ण्य विषय की झलक (Images) के अनुकर्ता हैं और सत्य पर उनका कोई अधिकार नहीं है। प्लेटो का कहना है कि यद्यपि कुछ लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि दुःखान्त नाटककार सभी कलाएँ और कौशल (Crafts) जानते हैं, उन्हें गुण-अवगुण आदि का सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान प्राप्त है और वे दैवी ज्ञान से भी सम्पन्न हैं और यह भी कि अच्छे कवि को उसी विषय पर लेखनी चलानी चाहिए जिसे वह जानता और समझता हो, अन्यथा वह लिख ही नहीं सकता (फिर भी ऐसी बात नहीं है)। वह कहता है कि हमें इस बात का पता लगाना चाहिए कि कहीं

ऐसा कहनेवाले लोग नकल करनेवालों से ठगे तो नहीं गए हैं, क्योंकि वे नहीं समझ पाते कि नकली वस्तु (जिसे वे देख रहे हैं) और सत्य के बीच कोई व्यवधान है और यह कि सत्य से अनभिज्ञ व्यक्ति बड़ी सुगमता से नकली चीजें (अनुकृतियाँ) बना देता है, ऐसी कृतियाँ 'छलावा' हैं, सच्ची वास्तविकताएँ नहीं ।

प्लेटो पूछता है कि यदि कोई वस्तु विशेष और उसकी प्रतिच्छाया या अनुकृति दोनों बना सकता है तो क्या वह अपने को अनुकृतियों के बनाने में लगा देगा और क्या वह सच्ची वस्तु के निर्माण को जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रिया समझकर न अपनाएगा? "मेरी समझ में यदि वह उन चीजों को जिनका कि वह अनुकरण करता है ठीक समझ सका है तो वह नकल को छोड़कर उन्हीं चीजों में काम करना पसंद करेगा, और अपने पीछे अपनी सुंदर कृतियों की यादगार छोड़ने की चेष्टा करेगा । वह दूसरे की प्रशंसा करने की अपेक्षा स्वयं प्रशंसित होना चाहेगा ।"

प्लेटो यहाँ पर कवि के ज्ञान की समस्या उठाता है । कवि के ज्ञान के संबंध में उसका अपना निष्कर्ष यह है कि कवि का ज्ञान आंशिक और अपूर्ण है, वह विशेषज्ञ नहीं है और सत्य से अनभिज्ञ है । यह आवश्यक नहीं कि वह जिस वर्ण्य विषय का सुंदर वर्णन करता हो उसका पूर्ण ज्ञाता हो । इसलिए जो लोग यह समझते हैं कि कवि मानवता का शिक्षक और गुरु है वे भूल करते हैं । प्लेटो यूनान के सबसे बड़े कवि होमर के विषय में पूछता है कि 'मेरे प्रिय होमर, यदि तुम गुण के ज्ञान में सत्य के सम्पर्क से दूर नहीं हो जिस प्रकार (हमारी परिभाषा के अनुसार) केवल झलक (Image) अंकित करनेवाला अनुकर्ता है, यदि तुम सत्य के अत्यन्त निकट हो और यदि तुम जानते हो कि कौन से क्रिया-कलाप मनुष्य को सामुदायिक या वैयक्तिक रूप से अच्छा या बुरा बनाते हैं तो बताओ कि किस नगर के शासन में तुमने सुधार किया· · · · ·कौन नगर तुमको नियमों का अच्छा विधायक मानता है और कौन नगर लाभान्वित हुआ ।' प्लेटो का स्पष्ट संकेत यही है कि 'कवियों द्वारा किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ ।' 'यदि होमर और हेसियड के समकालीन यह समझते कि वे कवि मनुष्यों को गुणों की शिक्षा देने में समर्थ हैं तो क्या वे उन कवियों को इसी प्रकार गाते हुए घूमने फिरने देते? क्या वे उनके साथ न लगे रहते, चाहे जितना

व्यय होता; और क्या उनको अपने यहाँ ठहरने को बाध्य न करते ? और यदि वे कवियों को ठहरने के लिए राजी न कर पाते तो क्या उनके साथ हर जगह तब तक लगे-लगे न फिरते जब तक पर्याप्त शिक्षा न पा लेते ?' किन्तु लोगों ने ऐसा नहीं किया। कवियों की ज्ञान-गरिमा का इसी से पता चल जाता है। प्लेटो के मतानुसार 'कवि अनुकर्ता मात्र है, वास्तविकता का पूर्ण ज्ञाता नहीं। जिस प्रकार चित्रकार बिना बढ़ईगीरी का काम समझे ऐसी चीज बना देता है, जो कम समझवालों को (रंग और चेष्टा के मोह में पड़कर) बढ़ई-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार होमर से लेकर सभी कवि गुण-धर्म या वर्ण्य विषय की झलक (इमेज) के अनुकर्ता हैं और सत्य पर उनका कोई अधिकार नहीं है।' 'कवि अपने वाक्यों और शब्दों में कला के अनुरूप रंग भरता है, और यद्यपि वह अनुकरण करना मात्र जानता है, फिर भी जो अनभिज्ञ हैं उनको वह सचमुच जानकार प्रतीत होता है। यदि वह जूते के बारे में या सैनिक विषय पर कुछ कहता है तो (लोगों को) जानकारी के साथ बोलनेवाला प्रतीत होता है, क्योंकि छंद, लय, सामंजस्य (आदि) के उसके आभूषणों में स्वाभाविक सम्मोहन है। किन्तु जब कवि के विचार कविता के रंगों से अलग कर दिए जाते हैं तब तुम जानते हो कि वे कैसे लगते हैं। वे उन चेहरों की तरह हैं जिनको उनकी जवानी या विकास बीत जाने पर देखने पर उनमें ताजगी दिखाई पड़ती है, किन्तु उनमें सौंदर्य नहीं होता। इस प्रकार कवि उन चीजों का अनुकर्ता है जिनके बारे में वह कुछ नहीं जानता। वह केवल आभास का अनुकर्ता है।'

इसी विचार को पुष्ट करते हुए प्लेटो आगे कहता है कि किसी कला-कौशल से तीन व्यक्ति संबंधित होते हैं--प्रयोक्ता, निर्माता और अनुकर्ता। इनमें प्रयोक्ता को किसी वस्तु की अच्छाई या बुराई का सम्यक् ज्ञान होता है, और वह निर्माता को उसके विषय में ठीक-ठीक बता सकता है। प्रयोक्ता के सम्पर्क में होने से निर्माता को भी इस विषय में अच्छे और बुरे का ज्ञान हो जाता है। किन्तु अनुकर्ता न तो उस वस्तु के प्रयोग से उसकी अच्छाई या बुराई जानता है और न वह इसके लिए विवश ही किया जाता है कि वह प्रयोक्ता के सम्पर्क में आए और प्रयोक्ता के निर्देश के अनुसार चित्रण करे। इस प्रकार वह हर वस्तु की अच्छाई और बुराई जाने बिना उसका अनुकरण

करेगा, वह उस वस्तु का अनुकरण करेगा जो अज्ञान में जनता को सुंदर दिखाई पड़ती है (किंतु वास्तव में अच्छी नहीं है)। इसी तरह जो दुःखान्त कविता या महाकाव्य लिखते हैं वे पूरे नकलची हैं।

काव्य के अनुकरणात्मक स्वरूप की विवेचना करने के उपरान्त प्लेटो उस प्रभाव की समीक्षा करता है जो काव्य के अनुशीलन से हम पर पड़ता है। प्लेटो का कहना है कि हमारे मन का श्रेष्ठ अंश बुद्धिसंगत और संयमित जीवन व्यतीत करना चाहता है किन्तु हमारे मनोविकार अभिव्यक्ति चाहते हैं। मनुष्य एकान्त में चाहे जो कुछ कहे या करे, चाहे जितना रोए या हँसे और अपने भावावेश को चाहे जितनी छूट दे दे किन्तु दूसरों के सामने अपने शोक आदि को संयमित करना ही उचित समझता है। इस प्रकार मनुष्य के मन में दो परस्पर विरोधी वृत्तियाँ हैं। उसका श्रेष्ठ अंश तो समाज के अनुशासन और बुद्धि का अनुगमन कर शोकादि को दबाता है किन्तु उसका निम्नतर अंश उसे शोकादि के पूरे-पूरे अभिव्यंजन के लिए विवश करता है। प्लेटो का कहना है कि कवि अपने काव्य में नायक के अतिशय शोक और हर्ष की असंयमित व्यंजना कर हमारे जीवन और चरित्र में असंयम उत्पन्न करता है और बुद्धिसंगत जीवनयापन कठिन हो जाता है। उसके मतानुसार कवि यदि बहुतों से सम्मानित होना चाहता है तो हमारे श्रेष्ठतम (बौद्धिक) अंश की ओर उन्मुख नहीं होता और उसको संतुष्ट नहीं करता, प्रत्युत अपनी अनुकृति में आनंदप्रद होने के लिए उद्वेलित, असंतुलित और असंयमित चरित्र का चित्रण करता है। कवि हमारे व्यक्तित्व के उसी अंश को संतुष्ट और आनंदित करते हैं जिसे हम दुःख में बलात् संयमित करते हैं किन्तु जो प्रकृति (या स्वभाव) से प्रेरित होकर दिल भरकर रोना और आँसू बहाना चाहता है। यह (निम्न) अंश दुःखित की प्रशंसा करता है और उसके प्रति द्रवित होता है और यह समझता है कि उसे इस दृश्य से कुछ आनंद मिल जाता है, जो उसे नाटक को तिलांजलि दे देने से न मिलेगा। बहुत कम यह समझ पाते हैं हम यदि दुःखान्त नाटक के पात्रों के प्रति द्रवित होने में अपने को पूरी छट दे देंगे और अपने पर अंकुश न रखेंगे तो हमें अपने ऊपर दुःख पड़ने पर संयम रखने में बड़ी कठिनाई होगी। मैं कहूँ कि 'अनुकरणशील कवि

प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में कुशासित राष्ट्र की स्थापना करता है।' "किन्तु मने अब तक काव्य की सबसे खराब बात नहीं कही। कुछ लोगों को छोड़कर अच्छे नागरिकों को भ्रष्ट करने की इसकी शक्ति इसका अत्यन्त खतरनाक गुण है।"

अनुकरणात्मक काव्य इन्हीं मनोविकारों को पुष्ट करता और सींचता है (जब कि इनका सूख जाना ही ठीक है) और इनको हमारा शासक बना देता है जब कि वास्तव में होना यह चाहिए कि हम इनका ऐसा अनुशासन करें कि हम अच्छे और आनंदयुक्त हो सकें।

व्यक्ति के जीवन पर काव्य के पड़नेवाले प्रभाव की समीक्षा करते हुए प्लेटो की दृष्टि उसके सामाजिक और नैतिक पक्ष की ओर भी गई है। काव्य का समाज पर कैसा प्रभाव पड़ता है, उस समाज का कैसा चारित्रिक संघटन होता है, काव्य की शिक्षा द्वारा उसकी नैतिकता का किस प्रकार का विकास होता है, बच्चों और नवयुवकों के लिए वह कहाँ तक हितकर है, कवि कहाँ तक समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाते हैं—इन सब प्रश्नों को प्लेटो ने उठाया है। प्लेटो के जो भी निर्णय हैं वे उसकी 'शिवत्व' या 'कल्याण की भावना' की कसौटी पर कसकर निर्धारित किए गए हैं। प्लेटो का इस संबंध में अपना निष्कर्ष यह है कि कवियों की बहुत-सी रचनाएँ असत्य, अनुपयुक्त और अहितकर हैं, इसलिए कवियों को आदर्श प्रजातंत्र से निर्वासित कर देना चाहिए, और यदि कवियों को इस प्रजातंत्र में रहना है तो नगर के नियम-विधायकों को नियम बना देने चाहिए कि कौन कविता करने पाएँगे और उनका वर्ण्य विषय क्या होगा।

प्लेटो का कहना है कि बहुत-सा साहित्य बच्चों के लिए अनुपयुक्त है, क्योंकि उसकी बहुत-सी शिक्षा उसके विपरीत है जो कि हम उनकी आत्मा में प्रविष्ट करना चाहते हैं। हमें इन कथाकारों का नियमन करना होगा और उन कहानियों में जो अच्छा होगा उसे ग्रहण करेंगे और जो बुरा होगा उसे निकाल देंगे। हमें इस समय की प्रचलित बहुत-सी कथाओं को निकाल देना होगा। होमर आदि बड़े कवियों ने झूठी कहानियाँ गढ़कर कही हैं और अब भी कह रहे हैं। हम उनकी निन्दा इसलिए करते हैं कि वे झूठ कहते हैं

और इसलिए और भी कि उनके झूठ आकर्षक नहीं हैं। इन कवियों ने नायक और देवताओं का जो रूप अंकित किया है वह उनसे बिलकुल नहीं मिलता-जुलता।

प्लेटो का कहना है कि देवताओं की दुश्चरित्रता का, चाहे वह सच भी हो तो भी, वर्णन न करना चाहिए (यद्यपि कवियों ने ऐसा किया है)। उनके आपसी लड़ाई-झगड़े, वैमनस्य और उनकी कुटिलता की कहानी यदि कहनी ही है तो उसे कम से कम लोग सुन पावें और नवयुवक न सुन सकें जिससे वे यह न सोचें कि हम वही कर रहे हैं जो हमारे पहले देवता कर चुके हैं। उन्हें सोद्देश्य कहानी सुनाई जाय जिससे उन पर गुणकारी प्रभाव पड़े। बच्चा यह नहीं जान पाता कि उन कहानियों में कोई छिपा हुआ अर्थ है या नहीं। छोटे होने के कारण कवियों की शिक्षा के उन पर जो धब्बे पड़ते हैं वे धुल नहीं पाते, प्रत्युत पक्के हो जाते हैं।

कवियों को चाहिए कि वे देवताओं का वैसा ही अंकन करें जैसे वे हैं। उन्हें दिखाना चाहिए कि देवता शिवत्व के कारण हैं और वे बुरे के कारण नहीं हो सकते। कवि को इस बात की अनुमति न दी जायगी कि वह ईश्वर को दुःखदायी बताए, और यदि अनुमति दी जाती है तो उसका कारण भी बताना होगा, जैसे कि ईश्वर अच्छे का कर्ता है और जो दुःख उठा रहे हैं वे इससे लाभान्वित होंगे। कवियों को चाहिए कि वे ईश्वर को अपरिवर्तनशील दिखाएँ। इसी प्रकार देवताओं और नरक आदि के ऐसे वर्णन न करने चाहिए जिससे सुननेवालों के हृदय में शौर्य के स्थान पर कायरता का संचार हो। इसी प्रकार विख्यात व्यक्तियों का रोदन और असंयमित हँसी आदि का वर्णन अनुपयुक्त है।

प्लेटो के मतानुसार कवियों ने जो कुछ लिखा उसमें शिवत्व का ध्यान नहीं रखा, इसलिए कवि और कविता का नियमन आवश्यक है। यद्यपि यह कहा गया है कि संगीत (अर्थात् कलाओं) का मूल्यांकन या निर्णय उससे मिलनेवाले आनंद के अनुरूप ही होना चाहिए, फिर भी इसमें (अनभिज्ञों का नहीं) शिष्ट व्यक्तियों का ही आनंद मानदंड बन सकेगा। कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वे हैं जो उत्तम व्यक्तियों को आनंदित करते हैं (जिनकी

समुचित शिक्षा हुई है) और जो शेष व्यक्तियों से शिक्षा और योग्यता में बढ़े-चढ़े हैं। निर्णायिकों में योग्यता के साथ ज्ञान और साहस की भी आवश्यकता है जिससे वे जनता की वाहवाही से आतंकित होकर पक्षपातपूर्ण और गलत निर्णय न दें। निर्णायिक दर्शकों का शिष्य न होकर उनका शिक्षक है और उसे उन लोगों का विरोध करना चाहिए जो दर्शकों को इस ढंग से आनंद देते हैं जो उचित और ठीक नहीं है। इससे कवियों का भी पतन होता है, क्योंकि वे बहुमत को प्रसन्न करने के लिए अशिष्ट रचनाओं का सर्जन करते हैं। इस प्रकार दर्शक कवियों को तैयार करते हैं और उनकी (दर्शक की) रुचि भी भ्रष्ट होती है।

इसे रोकने के लिए काव्य का नियमन आवश्यक है। काव्य का नियम द्वारा समर्थित होना आवश्यक है। अच्छा नियम-विधायक कवि को समझाएगा और यदि वह समझाने से न मानेगा तो उसको बाध्य करेगा कि वह सुंदर और सुयोजित लय में विद्वान्, समर्थ और अच्छे व्यक्तियों की बोली और चेष्टाओं का चित्रण करे। कवि अच्छे व्यक्ति को, चाहे वह अमीर हो या गरीब, बली हो या निर्बल, धन्य कहेगा और अन्यायी को, चाहे वह धनी क्यों न हो, तिरस्कृत बताएगा। कवि नियम और नगर के निर्णय के विरुद्ध कुछ भी रचना न करेगा और वह निर्णायिकों को दिखाए बिना और उनकी स्वीकृति पाए बिना अपनी रचना नागरिकों को न सुनाएगा। वे ही नागरिक (काव्य के द्वारा) प्रशंसा के अधिकारी होंगे जो नियमों का सदा पालन करते रहे हैं और जिन्होंने उत्तम शारीरिक तथा मानसिक जीवन व्यतीत किया है, किन्तु जब तक वे जीवित हैं और जब तक उनका जीवन उदात्त अन्त को नहीं प्राप्त होता, उनकी प्रशंसा करना ठीक नहीं है। पचास वर्ष से ऊपर के व्यक्ति काव्य और नृत्य की परीक्षा कर उनमें से प्रजातंत्र के उपयुक्त रचनाओं और नृत्यों को चुनेंगे। इसमें कवि और गायकों की सहायता भी ली जायगी और उनकी योग्यता का उपयोग भी किया जायगा, किन्तु कुछ इने-गिने अवसरों को छोड़कर उनकी रुचि और आनंद पर हम आश्रित न रहेंगे। स्त्री और पुरुष के स्वभाव-भेद के अनुरूप ही उनके उपयुक्त संगीत का भी विधान किया जायगा।

उस आदर्श प्रजातंत्र में सभी कवियों को काव्य-रचना की सुविधा न रहेगी। केवल वही कवि रचना कर सकेगा जो पचास वर्ष से कम का न हो और उनमें से कोई कवि रचना न करने पाएगा जिसमें काव्य और संगीत चाहे जितना हो किन्तु जिसने जीवन में कोई उदार कार्य नहीं किया। इसके विपरीत उन लोगों की कविताएँ चुनी जायँगी—चाहे उनमें काव्यत्व न हो—जो उत्तम हैं, नगर में सम्मानित हैं और अच्छे कार्यों के कर्ता हैं। इनका चुनाव नगर के, नियम-विधायकों और शिक्षाधिकारी के हाथ में रहेगा, जो उनको इच्छानुसार लिखने की स्वतंत्रता देंगे। दूसरों को लिखने की अनुमति न मिलेगी और न कोई (नियम-विधायकों द्वारा) असमर्थित और अनधिकृत रचनाओं के गाने का साहस करेगा, चाहे वे रचनाएँ कितनी ही सुंदर क्यों न हों।

अपने आदर्श प्रजातंत्र में प्लेटो कवि और काव्य के निर्वासन की सलाह बराबर देता है। उसके मतानुसार कवि सत्य ज्ञान और वास्तविकता से दूर है और उसका काव्य अनुकरणात्मक होने के कारण अत्यन्त निम्न श्रेणी की वस्तु है।

वह कहता है—"कवियों की जाति यह ठीक-ठीक जानने में सर्वथा असमर्थ है कि क्या अच्छा है और क्या नहीं।"

"सभी अनुकरणात्मक कलाएँ मुझे उन सब श्रोताओं की मानसिक शक्तियों को भयंकर रूप से नष्ट करनेवाली प्रतीत होती हैं जिनको प्रतिपान (Antiode) या काट के रूप में उन कलाओं की सच्ची वास्तविकता का ज्ञान नहीं है।"

"चित्रण और अनुकरण अपना काम सचाई से बहुत दूर करते हैं, और उनका हमारे अन्तर (या अंतस्) के उस अंश से संबंध है जो सत्य से बहुत दूर है। ये दोनों कलाएँ सत्य और शिव की मित्र नहीं हैं।"

"यदि हम काव्यदेवी को स्वीकार करेंगे—जो काव्य और वाद्य से युक्त अत्यन्त मधुर है—तो हमारे नगर के ऊपर नियम और सम्यक् बुद्धि के स्थान पर आनन्द और पीड़ा का शासन रहेगा।"

"......काव्य के समर्थक प्रमाणित कर स्थापित करें कि काव्य राष्ट्र और जीवन के लिए केवल आनंददायक ही नहीं, प्रत्युत हितकारी भी है, और

हम मित्रों की तरह उनकी बात सुनेंगे। यदि काव्य केवल आह्लादकारी न प्रतीत होकर लाभकारी भी है तो हम फायदे में रहेंगे।·····किन्तु यदि ऐसा नहीं किया जा सकता तो हम उन लोगों की तरह काम करेंगे जो किसी वस्तु से प्रेम करते हुए भी उसे हानिकर समझते हैं और अपने को उससे जबरदस्ती अलग कर लेते हैं।"

प्लेटो के काव्यसंबंधी विचारों की यह अत्यन्त संक्षिप्त रूपरेखा है। फिर भी यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि कथोपकथन की शास्त्रार्थ की शैली में लिखे हुए इन संवादों से यह जानना अत्यन्त दुष्कर है कि इनमें से कौन से विचार प्लेटो के हैं और कौन दूसरे वक्ताओं के हैं। यद्यपि व्याख्याताओं की प्रवृत्ति मुख्य वक्ताओं के शब्दों को प्लेटो की अपनी सम्मति के रूप में ग्रहण करने की रही है फिर भी पाठक को यही समझना चाहिए कि इन धारणाओं में रुचि या दिलचस्पी रखने के कारण प्लेटो ने उनका उल्लेख किया है, यह आवश्यक नहीं कि वे विचार प्लेटो के अपने हों। फिर भी इन रचनाओं के अध्ययन से प्लेटो के संबंध में पाठक की कुछ न कुछ धारणाएँ बनती ही हैं।

इस महान् दार्शनिक ने ईसा पूर्व की पाँचवीं शताब्दी में काव्य की जो गम्भीर और सर्वांगीण विवेचना की उसका महत्त्व आज भी कम नहीं हुआ है। काव्य के संबंध में उसने जो तात्त्विक चिन्तन प्रस्तुत किया उसके मौलिक सिद्धान्त और उसकी मूलभूत समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं।

प्लेटो ने दार्शनिक, सामाजिक और नैतिक धरातल पर काव्य की परीक्षा की (और उसने काव्य के संबंध में सत्य और शिव की समस्या उठाई)। दार्शनिक की भाँति वह काव्य में सत्य की खोज में प्रवृत्त हुआ और इस दृष्टि से उसने जो कुछ कहा उसका सारांश यही है कि कवि सर्वज्ञ नहीं है और न उसका काव्य ही सर्वज्ञता से पूर्ण होता है। उसके कथन में बहुत-सी अशुद्धियाँ होती हैं। इसलिए कवि आचार्य, आदर्श शिक्षक और पथ-प्रदर्शक के रूप में नहीं ग्रहण किया जा सकता, और न उसका काव्य ही समुचित शिक्षा का प्रदाता कहा जा सकता है।

प्लेटो ने काव्य को कौशलजन्य न मानकर दैवी प्रेरणा का परिणाम बताया और यह कहा कि कवि जो कुछ कहता है वह उसकी अपनी चीज न

होकर काव्यदेवी की प्रेरणा है, जिसके कि वह अधीन रहता है। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि कवि जो कुछ लिखता है उसकी वह 'इदमित्थम्' कहकर व्याख्या नहीं कर पाता और वह जो कुछ कहता है उसमें उसकी अपेक्षा दूसरों के विचारों और मनोभावों की अभिव्यक्ति अधिक रहती है। उसकी कारयित्री प्रतिभा का संबंध बुद्धिजन्य विचारों की अपेक्षा कथा और कल्पना से अधिक है। इस दैवी प्रभाव के अधीन व्याख्याता और पाठक भी हैं। इसका शायद यह अर्थ भी हो कि कवि की मानसिक दशा की पुनरावृत्ति अज्ञात ढंग से उसमें होती है, जिसे कवि की रचना से काव्यपूर्ण प्रभाव प्राप्त होता है।

आलोचक, कवि और पाठक को जोड़नेवाली शृंखला है। प्लेटो का कहना है कि जिस प्रकार कवि सर्वज्ञ नहीं है उसी प्रकार कवि से सीखनेवाले आलोचक या व्याख्याता का ज्ञान भी अपूर्ण है। प्लेटो के संवाद में आइयोन (Ion) अपने ज्ञान के संबंध में एक स्थल पर कहता है कि मैं जानता हूँ कि 'एक स्त्री या गुलाम क्या कहेगा'। यद्यपि इस विचार को विकसित नहीं किया गया फिर भी आलोचक विशेषज्ञ न होकर इसी से संबंधित है। उसका ज्ञान विशेषज्ञ के रूप में न होकर मनुष्य की मानवरूप में होनेवाली घटनाओं—कथन और क्रियाओं—से संबंधित है। इस प्रकार आलोचक का कर्तव्य काव्य के काव्यत्व का दिग्दर्शन है, कवि की विशेषज्ञता (या असफलता) का दावा पेश करना नहीं। कवि को कथावस्तु को कलापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए। आलोचक को उसका संवेदन होना चाहिए और उसे उसी ढंग से दूसरों के सामने उपस्थित करना चाहिए जिस प्रकार कवि ने किया। 'शृंखला का सिद्धान्त' इसी प्रकार कवि और व्याख्याता का काव्यात्मक एवं आदर्श चित्र उपस्थित करता है। प्लेटो ने कवि और व्याख्याता की बहुज्ञता को निराधार बताकर उस व्यावहारिक आलोचना की विचारधारा का निराकरण किया जो काव्य से जीवन में व्यावहारिक शिक्षा की प्राप्ति आवश्यक या संभव समझती थी।

प्लेटो ने (इस प्रकार) काव्य को उसके मौलिक रूप में देखने की चेष्टा की, अपनी सूक्ष्म आलोचन-शक्ति के द्वारा उसने काव्य पर आरोपित तत्कालीन विचारों को परिधान की तरह अलग कर उसे काव्यत्व के रूप में ग्रहण किया

और चाहा कि काव्य-रसिक भी उसका इसी दृष्टि से अनुशीलन करें। इसीलिए उसने काव्य में सत्य और ज्ञान की खोज को वृथा कहा। उसके मतानुसार काव्य का शिक्षा में इस विश्वास से उपयोग न करना चाहिए (जो उस समय प्रचलित था) कि उससे हमें उचित धार्मिक, नैतिक तथा ज्ञानपूर्ण (Factual) उपदेश प्राप्त होंगे। काव्य से किसी विशेष उपदेश की आशा को छोड़कर उसे काव्य के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि कितने ऐसे शिष्ट और सरस हृदय हैं जो काव्य के अंतरंग स्वरूप को समझते हैं, उसे केवल कला के रूप में ग्रहण करते हैं और इस प्रकार उसका रसास्वादन लेते हुए भी उसके अकल्याणकारी चित्रों के कुप्रभाव से बचे रहते हैं, जो उसमें पाए जाते हैं। थोड़े ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो काव्य को तथ्यांकन के (Factual) रूप में न ग्रहण कर उसे कल्पनात्मक मानते हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति काव्य को कला के रूप में ग्रहण करने में असमर्थ हैं, उनके लिए काव्य कलाकार द्वारा प्रस्तुत चित्र मात्र नहीं है, प्रत्युत उस अभिव्यंजित चित्र से उनको उत्तम या अधम जीवन के लिए प्रोत्साहन मिलता है। उसके चित्र सौंदर्य के कारण अधिकांश को मुग्ध करते हैं। काव्य के इस सम्मोहनकारी प्रभाव का अपरिपक्व मस्तिष्क पर विनाशकारी प्रभाव पड़ सकता है यदि उसमें व्यंजित चित्र अशुद्ध या अनैतिक हुए। प्लेटो अपन आदर्श 'रिपब्लिक' में इसीलिए काव्य और कवि का नियमन चाहता है। इसीलिए उसने शिक्षा के 'अभिभावक' या अध्यक्ष या सेंसर की स्थापना की जो यह निश्चित करेंगे कि कौन कवि हो, कैसी काव्य-रचना हो और काव्य का कितना अंश किन लोगों के हाथ में रखा जाय।

अभिभावक या सेंसर की स्थापना प्लेटो के उच्च विचार और उसकी दुर्बलता दोनों को प्रकट करती है। उसकी आदर्शवादिता, कल्याण और शिवत्व की उत्कट कामना ने उसे इस नियमन के लिए प्रेरित किया। यदि नियमन करना है तो केवल काव्य का ही नहीं प्रत्युत मनुष्य की सभी क्रियाओं का नियमन फल देगा। फिर भी प्रश्न उठता है कि सेंसर का सेंसर कौन बनेगा और कैसे होगा, और इस प्रकार का नियमन अत्यन्त कठिन है। उसकी सबसे बड़ी त्रुटि या दुबलता इसमें है कि वह यह भूल गया कि उसे मनुष्यों

से काम लेना है। मशीन या पशुओं की तरह उनसे बर्ताव नहीं किया जा सकता। गुण की ओर भी विवश करने पर जन-मन विद्रोह कर बैठता है, और यदि विवश करनेवाले सफल भी हुए तो भी मानव-मन विकृत हो जाता है। इसलिए यह जबरदस्ती उसकी दुर्बलता ही प्रकट करती है।

फिर भी समाज और नैतिकता का जो प्रश्न प्लेटो ने उठाया वह महत्त्व से शून्य नहीं है। प्लेटो की शिवत्व की भावना के विषय में कहा जा चुका है। कुछ विद्वानों के मतानुसार उसके नैतिक आग्रह का ऐतिहासिक पक्ष भी है। उनका कहना है कि प्लेटो का युग विषमता और उथल-पथल का युग था। यह उथल-पथल (Crisis) सांस्कृतिक थी, जिसके परम्परा-प्राप्त विश्वास नये-नये वैज्ञानिक विचारों से नष्ट हो चुके थे और जिसका ढाँचा महान् युद्ध से हिल गया था। सोफिस्ट (Sophists) के विचारों की नवीनता प्रचलित नैतिकता और रूढ़िवादिता की जड़ें हिला रही थी। यह युग आध्यात्मिक हलचल का युग था। आलोचना विश्व के विषय में हमारी प्रचलित धारणा को बदल रही थी और फिर धर्म, नैतिकता और राजनीति की ओर उन्मुख होकर उनको भी नष्ट-भ्रष्ट कर रही थी। प्लेटो का उद्देश्य इस स्थिति की रोक-थाम करना था। इसी से उसका संयम और शिवत्व तथा नियमन पर इतना आग्रह था। उस समय की विनष्ट होती हुई ग्रीक दुनिया में संयम और नियम की आवश्यकता का अनुभव बहुत से लोगों ने किया।

इस ऐतिहासिक पक्ष के साथ उसका चिरन्तन पक्ष भी है, और वह यह है कि प्रत्येक युग में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं या होंगे जो काव्य को काव्य की दृष्टि (Aesthetic view) से नहीं अपना पाते और जिनके व्यावहारिक जीवन पर काव्य के कुछ चित्रों का अहितकर प्रभाव पड़ सकता है।

काव्य-दृष्टि (Aesthetic view) और व्यावहारिक दृष्टि (Practical view) का यह संघर्ष आलोचना के संसार में बराबर चलता रहा है। प्लेटो का यही कहना है कि काव्य का अनुशीलन काव्य-दृष्टि से करना चाहिए, व्यावहारिक (या वैज्ञानिक) दृष्टि से नहीं।

ऐसी स्थिति में आलोचक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह कला और समाज के संबंध की जाँच करे, यह पूछे (या जाने) कि अमुक रचनाएँ सामान्य

जनता के लिए हितकर हैं या नहीं, और यह बताए कि किस आधार पर किसी रचना के प्रचलन के पक्ष या विपक्ष में निर्णय दिया जाय। प्लेटो उस काव्य-प्रेमी का उदाहरण है जो जीवन भर इस जिज्ञासा, खोज और छानबीन में प्रवृत्त रहा और जिसने निर्भयता और साहस के साथ अपने विचारों की सतत घोषणा की।

अरस्तू

अरस्तू का 'काव्यशास्त्र' (Poetics) वास्तव में काव्यशास्त्र का सम्यक् विवेचन करनेवाला विस्तृत एवं पूर्ण ग्रंथ नहीं है। 'काव्यशास्त्र' जिस रूप में प्राप्त है उसमें बहुत से स्थलों पर अनावश्यक विस्तार है, आवश्यक वस्तुविषयों का अपूर्ण या अर्धपूर्ण विवेचन है और कहीं-कहीं महत्त्वपूर्ण विषयों का संकेत मात्र है। विद्वानों का विचार है कि 'काव्यशास्त्र' लाइसीअम (Lyceum) के संस्थापक और प्रवक्ता का 'क्लासनोट' है जिसमें विद्यार्थियों के समक्ष प्रवचन के लिए महत्त्वपूर्ण विषयों पर टिप्पणियाँ (Points) टाँक ली गई हैं। इसलिए विद्वानों का कहना है कि उसके काव्यशास्त्र में जो बातें कही गई हैं उनके महत्त्व को ठीक-ठीक समझने के लिए, उनके पल्लवन एवं विवेचन के लिए अरस्तू के अन्य ग्रंथों और उसके दर्शन को भी ध्यान में रखना परमावश्यक है।

अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' का स्वरूप यद्यपि अधूरा है फिर भी उसका प्रभाव अत्यन्त व्यापक और गंभीर पड़ा। कई शताब्दियों तक योरुप में उसकी समीक्षा-प्रणाली का अखंड साम्राज्य रहा और बड़े-बड़े कवि और नाटककार उसके कथित सिद्धान्तों को आदर्श मानकर उसके अनुरूप रचना करने लगे, और आलोचक उन सिद्धान्तों को अकाट्य मानकर उनके पिष्टपेषण में लगे। अरस्तू का 'काव्यशास्त्र' साहित्य-क्षेत्र की 'बाइबिल' बन गया।

अरस्तू के काव्यशास्त्र के इस असामान्य सम्मान का कारण यह था कि उसके काव्यशास्त्र में काव्यकला-संबंधी जिन सिद्धान्तों का कथन हुआ है वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें जो सार्वभौमिक और स्थायी तत्त्व है उसकी सत्यता आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी अरस्तू के समय (के यूनान) में थी। अरस्तू के काव्यकला-संबंधी सिद्धान्तों के द्वारा साहित्य-समीक्षा का क्षेत्र व्यापक, प्रशस्त और स्पष्ट हुआ। उनमें पूर्व की अपेक्षा अधिक उन्नति दृष्टिगोचर हुई और उनसे आनेवाली पीढ़ियाँ प्रभावित हुईं। बहुत कुछ समय

और स्थिति सापेक्ष होते हुए भी उन सिद्धान्तों में अपूर्व मौलिकता और नवीनता थी। अरस्तू ने परम्परा-प्राप्त विचारों में नवीन अर्थ और अभिव्यक्ति भर दी। यहाँ पर काव्यशास्त्र के उन्हीं कतिपय महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का परिचय मात्र दिया जा रहा है।

इनमें कला का स्वरूप-संबंधी सिद्धान्त सबसे प्रमुख है। यूनान में 'ललित कला' शब्द प्रचलित न होकर उसके लिए 'अनुकरणात्मक कला' या 'उदार कला' (Liberal Arts) प्रचलित था। साहित्यक्षेत्र में इसका (अनुकरणात्मक कला का) सर्वप्रथम प्रयोग प्लेटो ने किया, यद्यपि यह संभव है कि इसका प्रयोग बोलचाल में इससे पहले का हो। अरस्तू ने इस शब्द को स्वीकार कर 'अनुकरण' को कलाओं की सामान्य विशेषता बताया, किन्तु इसके अर्थ और आशय को व्यापक बनाया। प्लेटो ने काव्य को अनुकृति की अनुकृति कहकर उसे मूल या सत्य से दो मंजिल दूर बताया और उसे नकल मात्र कहा। अरस्तू ने उसे कोरी नकल मात्र नहीं माना। अनुकरण की शैली की चर्चा करते हुए अरस्तू ने कहा कि कलाकार 'वस्तुओं का वैसा अनुकरण करे जैसा उनको होना चाहिए', उसे अपने समक्ष अप्राप्त आदर्श रखना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि यहाँ वस्तुजगत् की कोरी नकल मात्र से आशय नहीं है।

अरस्तू का कहना है कि 'कार्यरत मनुष्य' ही ललित कलाओं के अनुकरण के पात्र या आलम्बन हैं। इस कार्य (Action) में मानसिक जीवन और बुद्धिपूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति सभी का समावेश है। मानवजीवन ही इन कलाओं की प्रेरणा का मूल स्रोत है। एक शब्द में आत्मा के संपूर्ण क्रिया-कलाप का इसमें समाहार हो जाता है। इस सिद्धान्त के अनुरूप प्राकृतिक दृश्य या बाह्य जगत् कलात्मक अनुकरण का विषय नहीं बन सकता। यह तत्कालीन यूनानी कवि और कलाकारों की प्रचलित परिपाटी के अनुरूप है। वे बाह्य जगत् को पीठिका के रूप में या भावनाओं और मानव-रुचि के उद्दीपन के रूप में ही समाविष्ट करते थे।

कलात्मक अनुकरण कोरी नकल नहीं है, क्योंकि कलाकृति मौलिक वस्तु को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करती, प्रत्युत जैसी कि वह मानसगोचर होती है; और वह वस्तुगत यथार्थता को अंकित न कर उसका मानस प्रत्यक्ष समुपस्थित

करती है। इसी से अरस्तू का कहना है कि कवि को शक्य असंभावना (Possible Improbabilities) की अपेक्षा संभाव्य असंभावना (Probable Impossibilites) को पसंद करना चाहिए। कोरी नकल में यह कैसे संभव हो सकता है ?

काव्य और छंद का भेद बताते हुए अरस्तू ने कहा है कि जो कुछ पद्यबद्ध है वह सब काव्य नहीं है। काव्य का सार पद्यबद्धता में न होकर 'विचार' (Idea) के अनुकरण में है। इसके साथ ही अरस्तू का एक और महत्त्वपूर्ण कथन है कि अनुकरणात्मक कला या 'काव्य' अपने सर्वोच्च रूप में 'विश्वक' या सार्वभौमिक (Universal) की अभिव्यक्ति है। इसका अर्थ यह हुआ कि कला, जो 'अस्थिर' और विशेष है, उसका निराकरण कर, मूल वस्तु के स्थायी और सार-तत्त्व की अभिव्यक्ति करती है। वह प्रकृतिदत्त कोरी यथार्थता से आगे बढ़कर विचार (Idea) या आदर्श (Ideal) के रूप में वास्तविकता या यथार्थ के शुद्ध या उच्च स्वरूप को प्रकट करती है, जो विषमताओं, बाह्य प्रभाव और संयोग (Chance) आदि से मुक्त है। इस रूप में आदर्श और यथार्थ परस्पर-विरोधी नहीं ठहरते। इस प्रकार कला सार्वभौमिक के अनुकरण में आदर्श का अनुकरण करती है। इस प्रकार कला, मानवजीवन के मानस प्रत्यक्ष रूपों की—उसके चरित्र, भावना, क्रिया-कलाप आदि की—आदर्शात्मक अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार काव्य के संबंध में अरस्तू द्वारा प्रयुक्त 'अनुकरण', 'अनुकृति' कोरी नकल न होकर 'प्रतिकृति' (Reproduction) या विचार के अनुरूप सर्जन है। प्रत्येक वस्तु का आदर्शात्मक रूप है, जो पूरा-पूरा प्रकट नहीं हो पाता। इस रूप का कलाकार को मानस प्रत्यक्ष होता है। वह इसे पूर्ण अभिव्यक्ति देने की चेष्टा करता है और उस आदर्श को समुपस्थित या प्रकाशित करना चाहता है जो वास्तविकता के संसार में अपूर्ण रूप में प्रकट होता है।

इस प्रकार कलात्मक अनुकरण सर्जनात्मक कार्य हुआ। यह विचार के अनुकूल रूप में स्थूल की अभिव्यक्ति है। यह प्लेटो द्वारा कथित अनुकृति की अनुकृति और सत्य से दोहरी दूरी पर न होकर उच्चतर सत्य की अभि-

व्यक्ति है, सार्वभौमिक की अभिव्यक्ति है, जो विशिष्ट से बाह्य या अलग न होकर विशिष्ट में अन्तर्भुक्त है। कलाकृति आभास मात्र नहीं है, जो वास्तविकता के विरुद्ध है, प्रत्युत वास्तविकता की प्रतिकृति (Image) है, जो विचार-गर्भित है और जिसके (प्रतिकृति के) द्वारा विचार वास्तविक संसार की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से प्रकट होता है। इसी प्रकार कला द्वारा प्रयुक्त भ्रान्तियाँ (Illusions) मस्तिष्क को ठगने के लिए नहीं हैं, जैसा कि प्लेटो का मत था, प्रत्युत वे अन्तर्निहित विचारों को अभिव्यक्ति या स्वरूप देती हैं, जिनकी कि भौतिक स्थिति के स्वरूपों के माध्यम से समुचित अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।

अरस्तू का कथन है कि 'कवि का काम, जो घटित हो चुका है उसका कथन नहीं है, प्रत्युत जो घटित हो सके उसका कथन है—जो सम्भावना और आवश्यकता के नियम के अनुसार सम्भव हो।' यही भेद काव्य और इतिहास के मूल में है। इस प्रकार काव्य का क्षेत्र और वस्तुविषय इतिहास की अपेक्षा अधिक व्यापक और उच्चतर है, काव्य विशिष्ट की अपेक्षा सार्वभौमिक की अभिव्यक्ति है। दूसरी बात यह कि काव्य में घटनाओं का संघटन, उनका संबंध कारण-कार्य-संबंध के रूप में दृढ़ता से अभिव्यक्त होता है। इतिहास विशिष्ट घटनाओं की फेहरिस्त है, जो समय के क्रम में तो स्थित हैं किन्तु जिनमें कोई स्पष्ट कार्य-कारण-संबंध नहीं है।

इस प्रकार काव्य का सत्य सामान्य सत्य से अधिक व्यापक और उच्चतर है। 'जो होना चाहिए' वही काव्य का वस्तुविषय बन जाता है। काव्य बाह्य वस्तुओं से ऊपर उठकर उनकी अभिव्यक्ति करता है जो वास्तविक अनुभव में नहीं आतीं, वह ऐसा स्वरूप देता है जो सच्चे विचार के अनुरूप हैं। इसी से अरस्तू के मतानुसार संभावित असंभावनाएँ ग्राह्य हैं। मिथ्या को कुशलतापूर्वक कहना कवि का कर्तव्य है; उसे कथा (fiction) की सच्ची कला सीखनी चाहिए। कवि कल्पित पात्र और अविश्वसनीय घटनाओं का ऐसा सजीव चित्रण करता है और उनका उद्देश्य से संयोजित ऐसा क्रम उपस्थित करता है कि वे सत्य प्रतीत होने लगती हैं और हम अपने को भ्रान्ति को समर्पित कर देते हैं। कलात्मक चित्रण के द्वारा वास्तविक जीवन की

अविश्वसनीय वस्तुएँ संभावित प्रतीत होने लगती हैं; असंभव केवल संभव ही नहीं हो जाता, वह स्वाभाविक और अनिवार्य भी लगने लगता है।

अबौद्धिक तत्त्व (Irrational) तथा संयोग (Chance) इस विश्वास को धक्का पहुँचाता है। वह उस कार्य-कारण-संबंध का ही विरोध करता है जिसके अधीन उच्च काव्य है[1]। अरस्तू इसके समावेश को प्रोत्साहित नहीं करता। केवल दो परिस्थितियों में यह तत्त्व मान्य है। एक तो यदि संपूर्ण प्रभाव उससे बढ़ जाता हो, आश्चर्य-मिश्रित आनंद की प्राप्ति होती हो, जिससे विषमता की भावना का परिहार हो जाता है। दूसरे जब कि ऐसा प्रभाव अन्य साधनों से न उत्पन्न किया जा सकता हो।

अबौद्धिक और असंभावित का एक और रूप है जिसका काव्य में समावेश होता है। देवताओं की अतर्क्य कहानियाँ इसी के अन्तर्गत आती हैं। ये प्रचलित जनमत या धारणा के कारण मान्य बन गई हैं। अतः काव्य में इनका समावेश है।

इस प्रकार काव्य का संसार संभावित संसार का सर्जन है, जो अनुभव के संसार की अपेक्षा अधिक समझ में आता है। कवि स्थायी और शाश्वत तत्त्वों को अबौद्धिकता के तत्त्वों से मुक्त कर (जो मानव-व्यवहार और सच्ची घटनाओं के समझने में बाधा पहुँचाती हैं) प्रकट करता है। अपनी सामग्री के निर्माण में कवि प्रकृति से ऊपर उठ सकता है, किन्तु उसका खंडन नहीं कर सकता, उसके सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं कर सकता। काव्य का सत्य यथार्थता की सीमा के परे जा सकता है, किन्तु उन नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता जो यथार्थ संसार को बुद्धिपूर्ण (Rational) बनाते हैं। इस प्रकार काव्य अपने उच्च वस्तुविषय के कारण और अपने अंगों के घनिष्ठ संघटन के कारण उस आदर्श ऐक्य (Ideal Unity) पर पहुँच जाता है जो इतिहास को अप्राप्य है।

---

१. इसी प्रकार संयोग (Chance) कला के बिल्कुल विपरीत है, अराजकता और अव्यवस्था का संकेत है। काव्य में—जिसका उद्देश्य आदर्शात्मक ऐक्य (Ideal Unity) है—इसका कोई स्थान नहीं।

ऐक्य अंगों की विविधता से निर्मित है जो एक में संघटित हैं और सामान्य विचार के अन्तर्भूत हैं, किन्तु जिनका किसी निश्चित क्रम में संघटन आवश्यक नहीं है। इसमें एकता और विविधता या पूर्ण और अंग के बीच समुचित संतुलन आवश्यक है। दोनों का प्रदर्शन साथ हो। अन्यथा अत्यधिक लघु होने पर पूर्ण दिखाई पड़ेगा, अंग नहीं; और अत्यधिक दीर्घ होने पर अंग दिखाई पड़ेगा, पूर्ण नहीं। एकता के बीच अंगांगि-भावना पर अरस्तू का बराबर आग्रह है।

काव्य जिस प्रकार इतिहास से ऊँचा है उसी प्रकार दर्शन के निकट है। दर्शन के समान यद्यपि काव्य सार्वभौमिक की अभिव्यक्ति है फिर भी काव्य दर्शन नहीं है। इसमें अभिव्यक्ति सार्वभौमिक के यथावत् रूप की न होकर करणग्राह्य प्रसूति (Sensuous imagery) के माध्यम से होती है। दर्शन विशिष्ट में सार्वभौमिक की खोज करता है। काव्य का उद्देश्य विशिष्ट के माध्यम से सार्वभौमिक का चित्रण है, सार्वभौमिक सत्य को सजीव और सघन (Concrete) परिधान देना है। कवि स्थूल सत्य को ग्रहण कर उसे ऐसा परिवर्तित करता है कि सार्वभौमिक की भावना उसके बीच से चमकती है।

जिस प्रकार अरस्तू ने कलात्मक अनुकरण की अनुकृति को प्रतिकृति (Reproduction) बताया और उसे सर्जनात्मक क्रिया का आसन देकर उसके संबंध की हीन भावना को दूर किया उसी प्रकार उन्होंने उसे नैतिकता के चंगुल से मुक्त कर उसका शुद्ध साहित्यिक या कलात्मक दृष्टि से विवेचन किया। अरस्तू का यह प्रयास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन के रूप में स्वीकार किया जाता है।

कला के लक्ष्य के संबंध में तत्कालीन यूनान में दो प्रकार की मनोदृष्टियाँ प्रचलित थीं। परम्परा-प्राप्त और प्रचलित विचार यह था कि काव्य का सीधा लक्ष्य नैतिक है और कवि का मुख्य काम शिक्षक का है। प्लेटो इसी विचार का था। दूसरा विचार, जिसे सबसे पहले अरस्तू ने स्पष्टता के साथ प्रकट किया, यह था कि काव्य भावात्मक आनंद है और उसका लक्ष्य आनंद देना है। अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में साहित्यिक आलोचक की दृष्टि से विवेचन किया और यथासंभव उसे नैतिक या अन्य विचारणाओं से अलग रखा।

अरस्तू ने एक स्थान पर कहा है कि 'काव्य और राजनीति के यथावत् रूप (Currectness) का मानदंड उसी प्रकार एक नहीं है जिस प्रकार कि काव्य और दूसरी कलाओं का।' उसका आग्रह है कि काव्य का सत्य और वैज्ञानिक सत्य एक नहीं हैं। अरस्तू यद्यपि नैतिक भावनाओं का उल्लंघन नहीं करता, फिर भी उसका स्पष्ट कथन है कि कला या काव्य का अपना अलग मानदंड है। उत्कृष्ट कला की कसौटी आनंद है, यद्यपि इस आनंद को स्वस्थ और बुद्धिपूर्ण (Sane) होना चाहिए, जो समाज के उत्कृष्ट अंग को स्वीकार्य हो।

अरस्तू ने कहा है कि नैतिक हीनता के चित्रण को केवल 'आवश्यकता' ही क्षम्य बना सकती है। यह आवश्यकता किसी कृति के रचना-विधान की आन्तरिक आवश्यकता ही है। केवल साहित्यिक परमावश्यकताएँ ही ट्रेजेडी में उल्लिखित चरित्र की श्रेष्ठता के नियम का उल्लंघन कर सकती हैं।

इस प्रकार अरस्तू के मतानुसार 'एपिक' और 'ट्रेजेडी' में चित्रित पात्रों का आधार नैतिक अच्छाई है, किन्तु यह अच्छाई उदात्त स्तर की है, जो सामान्य स्तर के शुभ गुणों से भिन्न है। पात्रों की जो भी नैतिक त्रुटियाँ हों फिर भी वे हम पर अपनी छाप डालते हैं और भव्यता की भावना को उत्पन्न कर दैनिक जीवन की वास्तविकता से ऊपर उठ जाते हैं और हमें उठाते हैं। उस समय हम सामान्य नैतिक मानदंड से उनकी नाप नहीं करते।

इस प्रकार अरस्तू ने सबसे पहले समीक्षा-सिद्धान्त को नीतिशास्त्र से स्वतंत्र करने का प्रयास किया। उसका स्पष्ट कथन है कि काव्य का लक्ष्य परिष्कृत आनंद है। फिर भी वह पूर्व के प्रभावों से सर्वथा मुक्त न हो सका। पात्रों के कलात्मक चित्रण को वह नैतिकता के प्रकाश में देखता है और पात्रों के प्रकार को वह नैतिक कोटियों में परिगणित करता है। फिर भी वह कवि के नैतिक उद्देश्य या उसकी कला के नैतिक प्रभाव को कलात्मक लक्ष्य का स्थान नहीं ग्रहण करने देता। कवि समुचित आनंद उद्भूत करने में असफल होता है तो वह अपनी कला के मुख्य कर्तव्य या काम में असफल है। शिक्षक-रूप में वह चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो फिर भी वह कवि या कलाकार-रूप में बुरा ही है।

इस संबंध में अरस्तू का पूरा-पूरा अनुगमन आगे न हो सका। काव्य के नैतिक स्वरूप की परम्परा चलती रही, जो रोमन युग में दृढ़ हो गई। अरस्तू के सिद्धान्त में आगे चलकर आनंद और उपादेयता समान मात्रा में मिला दिए गए।

अरस्तू के अन्य मुख्य सिद्धान्तों में 'कैथारसिस' (Katharsis) या रेचन का सिद्धान्त बड़ा महत्त्वपूर्ण है। 'ट्रेजेडी' की व्याख्या करते हुए अरस्तू ने कहा है कि "ट्रेजेडी ऐसे कार्य का अनुकरण है जो गंभीर, पूर्ण और कुछ भव्य है, ...(ट्रेजेडी) करुणा और भय के द्वारा इन मनोविकारों का समुचित 'कैथारसिस' या रेचन उपस्थित करती है।"

प्लेटो काव्य की निंदा इसलिए भी करता था कि 'काव्य वासनाओं को भूखा मारने के स्थान पर उनको खाना-पानी देता है' और 'बुद्धि को भावना के लिए सिंहासन से पदच्युत करता है'। इसके विपरीत अरस्तू आत्मा के भावात्मक अंश का हनन आवश्यक नहीं समझता। भावना का नियमित प्रकाशन हमारे स्वभाव का संतुलन बनाए रखता है। 'ट्रेजेडी' करुणा और भय के प्रकाशन का माध्यम है। वह इन भावनाओं को उद्दीप्त कर उनको शान्त करती है।

रेचन आयुर्वेद का शब्द और प्रक्रिया है। इसमें बाह्य साधन या आन्दोलन का प्रयोग आन्तरिक शान्ति के लिए होता है। अरस्तू संगीत के द्वारा भी एक प्रकार के रेचन की चर्चा करता है। उद्दीपन के रूप में यह संगीत धार्मिक आवेश की मुक्ति का साधन बनता था। 'इस विधान में जो रोगी आते थे वे अपनी सामान्य स्थिति को पहुँच जाते थे, मानो उन्होंने आयुर्वेदिक रेचन का इलाज किया हो'।

अरस्तू ने इस सिद्धान्त को 'ट्रेजेडी' पर लागू किया। जो लोग करुणा और भय के प्रति संवेदनशील हैं वे और सामान्यतया भावात्मक स्वभाव के व्यक्ति, ऐसा ही अनुभव करते हैं। उनमें एक प्रकार का रेचन (Katharsis) होता है और उनको पूर्ण आराम मिलता है। इस प्रकार रेचन उद्दीप्त भावनाओं के निर्गमन के साधन-रूप में गृहीत हुआ।

अरस्तू ने इसे और व्यापक बनाया और कला का सिद्धान्त बताया। आयुर्वेद की शब्दावली में रेचन पीड़ाकारक तत्त्व का शरीर से परिहार है और इस प्रकार बाह्य वस्तुओं के निराकरण के बाद जो कुछ बच

रहता है उसका परिष्कार या शुद्धि है। 'ट्रेजेडी' पर इसे लागू करते हुए हम देखते हैं कि वास्तविक जीवन में करुणा और भय की भावना में उद्वेलनकारी तत्त्व रहता है। नाटक की उत्तेजना के बीच उद्वेलनकारी तत्त्व निकल जाता है। वास्तविकता के बीच भय और करुणा में जो पीड़ाकारक अंश होता है वह निकल जाता है और भावनाएँ परिष्कृत हो जाती हैं। इस प्रकार ट्रेजेडी का काम केवल करुणा और भय के लिए मुक्तिद्वार प्रस्तुत करना मात्र नहीं है किन्तु उनका कलात्मक शमन है और कला के माध्यम से उनका परिष्कार भी है। दर्शक अपने से अधिक उदात्त दुःख-सहन को देखकर सहानुभूति के आवेश का अनुभव करता है और अपने (लघु, स्वार्थपूर्ण अहंभाव) से ऊपर उठ जाता है। भावना के इस उन्नयन में ही—जो कि मनुष्य को अपनी व्यक्तिगत भावना (या सेल्फ) से परे ले जाता है—ट्रेजेडी का अपना विशिष्ट आनंद है। पीड़ा, उद्वेलन आदि का जन्म उस स्वार्थपूर्ण तत्त्व से होता है जो वास्तविकता के संसार में इन भावनाओं के साथ चिपका रहता है। जब अहं का रंग हट जाता है तो पीड़ा भी दूर हो जाती है। इसीलिए 'ट्रेजेडी' के रेचन के लिए आवश्यक है कि दुःख-सहन का स्वरूप व्यापक हो, पात्रों के कार्य और भाग्य महती समस्याओं से संबद्ध हों और दर्शक अपनी विशिष्टता से ऊपर उठकर सार्वभौमिक नियम का दर्शन कर सके। व्यक्ति की अपनी लघु भावना से ऊपर उठने के लिए स्थिति या पात्रों में कुछ न कुछ भव्यता अनिवार्य है। इस प्रकार अरस्तू द्वारा रेचन का सिद्धान्त, भावात्मक आन्दोलन के शमन और परिष्कार का सिद्धान्त बन गया, यद्यपि इसकी बहुत-सी गुत्थियाँ अभी तक पूरी-पूरी नहीं सुलझाई जा सकी हैं।

नाटकों के संबंध में अरस्तू का सबसे विख्यात सिद्धान्त ऐक्य (Unity) का है। कार्य (Action) का ऐक्य 'ट्रेजेडी' की प्रथम आवश्यकता है। ऐक्य वस्तु को सीमित और निश्चित करने का सिद्धान्त है। इसके प्रभाव में वस्तु अपरिभाषित, अनिश्चित और अहैतुक (accidental) बनकर खो जाती है। इस ऐक्य के द्वारा वस्तुविषय को विशिष्टता प्राप्त होती है।

कार्यैक्य का सिद्धान्त अंगांगि-भाव की आन्तरिक एकता (Organic unity) का सिद्धान्त है, जो बाह्य पूर्णता या समग्रता में अपने को प्रकट करता

है। यह अनेकता के विरुद्ध तो है, किन्तु विविधता के विरुद्ध नहीं। एक पूर्ण कार्य के बीच, जिससे ट्रेजेडी का ऐक्य सम्पादित होता है, उत्तरोत्तर घटनाएँ आन्तरिक कार्य-कारण-संबंध से—आवश्यकता और संभावना के नियम से—जुड़ी रहती हैं।

यह ऐक्य दो प्रकार से अभिव्यक्त होता है। प्रथमतः कार्य-कारण-संबंध में—जो नाटक के विविध अंगों को एक में संबद्ध किए रहता है—विचार, मनोभाव, इच्छा के निश्चय, बाह्य घटनाएँ अन्तर्गुम्फित रहती हैं। दूसरे इस तथ्य में कि घटनाओं की पूर्ण शृंखलाएँ अपने पूर्ण संघर्ष के साथ एक ही लक्ष्य की ओर संचालित होती हैं। कार्य का विकास एक बिंदु की ओर बढ़ता है। उसके अन्तर के उद्देश्य का सूत्र स्पष्ट हो जाता है। गौण प्रभाव बढ़ती हुई एकता की भावना के अधीन कर दिए जाते हैं। अन्त, आरम्भ के साथ अनिवार्य निश्चयात्मकता के साथ जोड़ दिया जाता है और इस प्रकार अन्त में हमपर पूर्ण का आशय स्पष्ट होता है। ऐक्य की सबसे बड़ी कसौटी या परीक्षा यही शक्तिशाली और उद्दीप्त (Concentrated) भावना है।

नाटकीय ऐक्य में अरस्तू का आग्रह केवल कार्यैक्य पर ही है। फिर भी अरस्तू के काव्यशास्त्र के साथ 'ऐक्यत्रयी' की भावना अत्यन्त लोक-प्रचलित है। 'काल-ऐक्य' (Unity of Time), जो कभी-कभी 'दिन-ऐक्य' भी कहा जाता था, काव्यशास्त्र के केवल एक उल्लेख पर आश्रित है। एपिक और ट्रेजेडी विस्तार में भी भिन्नता रखती हैं। ट्रेजेडी यथासंभव अपने को सूर्य की एक परिक्रमा तक सीमित रखती है या इससे थोड़ा बढ़ जाती है, जब कि 'एपिक' के लिए समय की कोई सीमा नहीं है। यहाँ पर यूनानी रंगमंच के एक सामान्य प्रचलन का उल्लेख है, कोई नियम नहीं निर्धारित किया गया है।

इसी प्रकार स्थानैक्य (Unity of Place) यूनानी नाटकों में परिपालित रंगमंच की परिपाटी थी, जिसका उल्लंघन भी होता था, अधिकतर 'कमेडी' में। काव्यशास्त्र में इसका संकेत भी नहीं है। कलात्मक सिद्धान्त के रूप में आलोचकों ने इसका निर्धारण कालैक्य से किया है।

यूनानी नाटकों में इन गौण ऐक्यों के पालन के कई कारण हैं। यूनानी नाटक की साधारण किन्तु उद्दीप्त गत्यात्मकता या क्रम-विकास स्थान-परिवर्तन

या दृश्यों के बीच अधिक अवकाश की बहुत कम माँग करता था या इसकी आज्ञा देता था। इस प्रकार के व्यवधान से समग्र की एकता का प्रभाव भंग हो जाता। थियेटर में उन्हीं अभिनेताओं की सतत उपस्थिति, जहाँ कि न पर्दे थे और न नाटकों का अंकों में विभाजन था, सतत प्रवहमान और अटूट कार्य का चित्रण स्वाभाविक था।

कालैक्य के संबंध में काफी वाद-विवाद रहा। 'सूर्य की परिक्रमा' से क्या आशय है? कुछ लोगों ने इसे चौबीस घंटे बताया, कुछ ने बारह। डासिए (Dacier) ने नाटकीय कार्य की सीमा बारह घंटे नियत की। ये दिन के घंटे हो सकते हैं या रात के या आधे एक के आधे दूसरे के। उसके अनुसार आदर्श ट्रेजेडी में कार्य के समय और अभिनय के समय में तादात्म्य होना चाहिए। वास्तविक और कल्पनात्मक समय के तादात्म्य के आग्रह के मूल में यह भ्रामक सिद्धान्त है कि नाटकीय अनुकरण का प्रयोजन या आशय एक प्रकार की प्रवंचना है।

स्थानैक्य कालैक्य के सिद्धान्त का प्रासंगिक निष्कर्ष माना गया। इसके मूल में यह सिद्धान्त बताया गया कि दर्शक के एक स्थान पर बैठे रहने पर यदि स्थान-परिवर्तन किया गया तो उसे यह भास होगा कि मैं अवास्तविक अभिनय में सहायक हूँ। इस प्रकार अनुकरण त्रुटिपूर्ण होगा। इसलिए स्थानैक्य पर इतना आग्रह हुआ।

फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि समय और स्थान के सतत परिवर्तन से कार्यैक्य को बाधा पहुँच सकती है। साथ ही समय और स्थान की कल्पना के निर्धारण (Idealisation) के बिना नाटक भी संभव नहीं है। किन्तु यदि कवि हमें सुदूर देश और अतीत में ले जाने में सफल होता है—प्राचीन रोम या एथेन्स में—तो हम उससे नाटकीय कार्य में लगनेवाले समय पर उससे झगड़ा नहीं करेंगे। कवि की कलात्मकता इसी में है कि हम समय को ही भूल जायँ और यदि हम उसके संग में वर्ष, मास और दिन को भूल जाते हैं तो हम इस असंभावना के विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाते।

फिर भी इनमें कार्यैक्य सबसे प्रधान है। यदि इसकी रक्षा हो सकी तो दूसरे ऐक्य अपनी चिन्ता स्वयं कर लेंगे। कार्यैक्य नाटक का उच्च

और नियामक विधान है। कालैक्य और स्थानैक्य का कलात्मक महत्त्व गौण है।

नाटक के कार्य की संभावना बड़ी व्यापक है। वह बाह्य क्रिया-कलाप मात्र नहीं है। नाटक का कार्य वह कार्य है जो आन्तरिक इच्छाशक्ति से उद्भूत होकर अपने को बाहरी क्रिया-कलाप में प्रकट करता है। 'ड्रामा' (नाटक) शब्द ही इस विचार का संकेत देता है। क्रिया (dran—द्रन्) जिससे कि संज्ञा बनी है कार्य करने की भावना को व्यक्त करने के लिए सबसे समर्थ शब्द है। नाटकीय कार्य में केवल कृति (deeds), घटनाओं और परिस्थितियों का ही समाहार नहीं है प्रत्युत मानसिक संचालन (Mental process) और प्रेरणाओं का भी, जो बाहरी घटनाओं के मूल में रहती हैं या उनसे प्रसूत होती हैं।

जो दो शब्द काव्यशास्त्र में अधिक प्रयुक्त हुए हैं वे हैं एथॉस (Ethos) और डायनोइया (Dianoia) जिनका अनुवाद क्रमशः चरित्र (Character) और विचार किया जाता है। काव्यशास्त्र में यह चरित्र (या व्यक्तित्व) के (अलग) अंग माने गए हैं। एथॉस अरस्तू के अनुसार चरित्र का नैतिक तत्त्व है। डायनोइया विचार है, बौद्धिक तत्त्व है, जो प्रत्येक बुद्धिपूर्ण व्यवहार में निहित है, जिसके माध्यम से एथॉस की बाह्य अभिव्यक्ति होती है। जहाँ नैतिक चुनाव या इच्छा की दृढ़ता की अभिव्यक्ति होती है वहाँ चरित्र (एथॉस) प्रकट होता है। विचार के अन्तर्गत वक्ता की बौद्धिकता (Reflection)—अपने वक्तव्य की प्रामाणिकता और प्रतिद्वन्द्वी के वक्तव्य की अप्रामाणिकता—जीवन और आचरण संबंधी सामान्य सिद्धान्त-वाक्य आते हैं।

कार्य यद्यपि नाटक की प्रथम आवश्यकता है फिर भी वह अपने में पर्याप्त नहीं है। उसके नाटकीय होने के लिए कार्य का विकासावस्था के बीच प्रदर्शन आवश्यक है, साथ ही उसके परिणाम की अवस्था की अभिव्यक्ति भी। कतिपय मानसिक स्थितियों से उसका पारस्परिक कार्य-कारण-संबंध भी हो। हम उन भावनाओं को भी देखना चाहते हैं जिनसे कार्य उद्भूत होता है, इच्छा की प्रेरणा-शक्ति को, जो कि उसे समाप्ति की ओर ले जाती है, और कार्य के प्रभाव

को कर्ता और नाटक के अन्य पात्रों में ढूँढ़ना चाहते हैं। इस प्रकार नाटक कार्यरत इच्छा या भावना है।

किंतु नाटक केवल भावनाओं की संपूर्ण और महत्त्वपूर्ण, समाप्ति की ओर उन्मुख कार्याभिव्यक्ति ही नहीं है। इसमें संघर्ष या द्वन्द्व भी निहित है। प्रत्येक नाटक में शक्तियों का संघर्ष रहता है। मनुष्य वास्तविकता की सीमाओं में बंदी है। उससे बाहर उसकी आवश्यकताएँ उसकी स्वतंत्रता को सीमित रखती हैं। अपने से बड़ी शक्ति (Superior power) से उसकी इच्छाएँ टकराती रहती हैं, उसके अन्तस् में उसकी विभक्त इच्छाओं का आन्तरिक झगड़ा है और उसका दूसरे मनुष्यों की इच्छाओं से भी संघर्ष चलता है।

फिर भी प्रत्येक संघर्ष नाटकीय नहीं है। अरस्तू के कथनानुसार सभी कार्य बाह्य क्रिया-कलापों में नहीं अभिव्यक्त होते। विचारों की मौन प्रक्रिया भी चलती रहती है, जिसे कार्य कहा जा सकता है, यद्यपि वह क्रिया-कलाप के रूप में मुखरित नहीं होती। नाटक का कार्य उस आन्तरिक क्रिया पर नहीं आधारित हो सकता जो विचार या भावना की परिधि के परे नहीं जाती। जहाँ पर कि नाटक का आकर्षण-केन्द्र आन्तरिक संघर्ष है वहाँ भी इस द्वन्द्व के बाह्य और आभ्यन्तर रूप होने चाहिए। इसे विशिष्ट कार्यों में, बाह्य जगत् के साथ विशिष्ट या स्पष्ट संबंध में व्यक्त होना चाहिए। इसे कर्ता को दूसरे व्यक्तित्वों से संघर्ष में उपस्थित करना चाहिए। इसलिए शुद्ध अन्तस् मात्र का संघर्ष नाटक के क्षेत्र से बाहर है—केवल मन के बीच की क्रिया और प्रतिक्रिया मात्र—जैसे योगी, कलाकार और विचारक का ऐकान्तिक संघर्ष। यह तभी नाटकीय होता है जब उसका कथावस्तु में नियोजन होता है जो (कथावस्तु) उसे महत्त्व देता है और जिससे वह महान् घटनाओं की शृंखला की लड़ी बन जाता है।

कार्य की इस प्रधानता के कारण ही नाटकीय पात्रों में ऐसी शक्ति रहती है जो परिस्थिति को बना सकती है और मोड़ सकती है, जो बाधाओं को हटा देती है। पात्रों का चरित्र शक्तिमय और टक्कर लेनेवाला होता है। अतः भावनाओं को इच्छा-शक्ति के रूप में दृढ़ होना चाहिए और इच्छा को क्रिया-कलाप में अभिव्यक्त होना चाहिए।

कार्य की इस प्रधानता के कारण ही अरस्तू ने कहा कि "नाटकीय कार्य प्रधान है और चरित्र गौण है। नाटकीय कार्य चरित्र-चित्रण के उद्देश्य से नहीं है, चरित्र कार्य के अधीन (और गौण) है। कार्य के बिना ट्रेजेडी नहीं हो सकती, यद्यपि चरित्र के बिना हो सकती है।" विद्वानों ने अरस्तू के इस कथन की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि अरस्तू का आग्रह चरित्र की अपेक्षा कार्य पर अधिक है।

काव्य अरस्तू के अनुसार मानवजीवन में सार्वभौमिक तत्त्व की अभिव्यक्ति है। आधुनिक शब्दावली में कहा जा सकता है कि यह जीवन पर आदर्श का रंग चढ़ाता (Idealise) है और उसे आदर्शात्मक बनाता है। आदर्शात्मकता से दो अर्थ लिए जाते हैं जिससे कभी-कभी भ्रान्ति होती है। सौंदर्यशास्त्र के लेखकों का इससे आशय है किसी वस्तु का अपने स्थायी और सार रूप में, सच्चे विचार के अनुरूप स्वरूप में, चित्रण। जो स्थानिक या क्षणिक है वह छोड़ दिया जाता है या गौण बना दिया जाता है, विशिष्ट को इतना व्यापक बनाया जाता है कि वह मानवीय और सार्वभौमिक बन जाता है। आदर्शात्मक इस अर्थ में काव्यशास्त्र का सार्वभौमिक है।

किन्तु इसका एक और लोकप्रिय अर्थ है जिसमें आदर्शात्मक चित्रण का अर्थ विचार की अभिव्यक्ति में उद्वेलनकारी प्रभावों का अभाव मात्र नहीं, किन्तु सुंदर का स्वीकारात्मक ग्रहण है। वस्तु की विशिष्टता को लेकर उसके कोमलतम (Grace) या शक्ति का दृढ़ और स्पष्ट अंकन होता है, उसका सौंदर्य ऊँचा उठाया जाता है, उसका महत्त्व बढ़ाया जाता है, और साथ ही मूलवस्तु से उसकी समानता को बनाए रखा जाता है। कला के उच्च क्षेत्र में इस शब्द के दोनों अर्थ एक में मिल जाते हैं। जब वस्तुविषय में स्वतः अपनी गंभीरता या भव्यता होती है तो अहैतुक (accidental) के निराकरण से उसकी विशेषताएँ और भी प्रमुख हो जायँगी और फलतः प्राप्त होनेवाले आदर्शात्मक रूप में सौंदर्य के तत्त्व बढ़ जायँगे, अहैतुक के निराकरण की प्रक्रिया में ही वास्तविकता के संसार की अपेक्षा उच्चतर सौंदर्य और पूर्णता आविष्कृत होती है। इसलिए ट्रेजेडी अपने नायकों के रूप में दोनों प्रकार की आदर्शात्मकता को संयोजित करती है। यह सार्वभौमिक रूप भी प्रदान

करती है, और, ऐसा करने में, सौंदर्य-वृद्धि (या सजावट) भी करती है। आदर्श वह है जो लघु और अहैतुक से ऊपर उठा रहता है। सार्वभौमिक तत्त्व के कारण वस्तु के सच्चे विचार के अनुरूप होने के कारण व्यक्ति या व्यष्टि की परिधि से ऊपर उठ जाता है।

अरस्तू के काव्यसिद्धान्तों का यह अत्यन्त संक्षिप्त परिचय है। फिर भी इससे उस महान् दार्शनिक की प्रतिभा और विश्लेषण-शक्ति का कुछ आभास मिल जाता है, यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि काव्यशास्त्र में कुछ विषय छूट गए हैं; उसके निर्णय तत्कालीन साहित्यिक कृतियों पर आश्रित हैं जो अंतिम और पूर्ण नहीं कही जा सकतीं, और बहुत से नियम निश्चयात्मक न होकर प्रयोगात्मक (Tentative) हैं, फिर भी उसकी निष्पक्षता से हम आश्चर्यान्वित होते हैं। अरस्तू अपने समय की सीमा से कुछ ऊपर अवश्य उठा, यद्यपि वह एथेनियन रंगमंच के नियम और परिपाटी से सर्वथा मुक्त न हो सका। फिर भी वह काव्य के जिन सार्वभौमिक सिद्धान्तों के निष्कर्ष पर पहुँचा वे महत्त्वपूर्ण हैं। इसी से अरस्तू का योरुपीय साहित्य पर अत्यन्त व्यापक और गंभीर प्रभाव पड़ा। उसकी समीक्षा-प्रणाली 'अरस्तू-प्रणाली या सिद्धान्त' के नाम से विख्यात हुई और उसने कई शताब्दी तक योरुप के कवि, नाटककार, आलोचक और साहित्य-सर्जन को प्रभावित किया।

अरस्तू का काव्यशास्त्र

अरस्तू ने अपने 'काव्यशास्त्र' में काव्य, उसके अनेक प्रकार, उनके मुख्य गुण के विवेचन का प्रस्ताव किया है। अच्छे काव्य के लिए आवश्यक वस्तुविषय के ढाँचे की जाँच-पड़ताल और काव्य के विविध अंगों की संख्या और स्वरूप का—जिनसे कि काव्य निर्मित है—परीक्षण भी उनका उद्देश्य है।

अरस्तू के मतानुसार काव्य तथा अन्य कलाओं की मूल प्रेरणा अनुकरण है। उनका सामान्य स्वरूप अनुकरणात्मक है। इन कलाओं में जो एक दूसरे से भेद लक्षित होता है वह माध्यम, आलम्बन तथा अनुकरण के प्रकार या परिपाटी का है। यह अनुकरण लय, भाषा या सामंजस्य के द्वारा अलग-अलग या इनके संमिलन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार वंशी या 'लायर' के संगीत में केवल सामंजस्य या लय का प्रयोग होता है और नृत्य में केवल लय का प्रयोग होता है।

किंतु एक और कला है जो केवल भाषा के द्वारा गद्य या पद्य में अनुकरण करती है, जिसे अब तक कोई नाम न मिला। लोग प्रायः पद्य के नाम के साथ 'कवि' या 'बनानेवाला' शब्द जोड़ देते हैं और इस प्रकार 'ऐलेजी का कवि' या 'प्रबंध-काव्य का कवि' कहते हैं, मानो अनुकरण कवि नहीं बनाता है प्रत्युत पद्य उन सबको बिना भेद-भाव के उस नाम (कवि) का अधिकारी बना देता है।

माध्यम के बाद अरस्तू अनुकरण के आलम्बन के चित्रण के संबंध में कहता है कि "इस चित्रण के स्वरूप विविध हो सकते हैं। चूँकि अनुकरण के आलम्बन, कार्य में संलग्न मनुष्य हैं और ये मनुष्य उच्च या निम्न प्रकार (Type) के होंगे (चूँकि नैतिक चरित्र ऐसे भेद के अनुरूप है और अच्छाई या बुराई नैतिक भेद के मुख्य चिह्न हैं), इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें मनुष्यों का चित्रण वास्तविक जीवन की अपेक्षा श्रेष्ठतर (अच्छा) या निम्नतर (खराब) या जैसा कि वे हैं वैसा करना चाहिए।" यही भेद ट्रेजेडी

(दुःखान्त नाटक) को 'कमेडी' (सुखान्त नाटक) से अलग करता है। कमेडी का उद्देश्य मनुष्यों को वास्तविक जीवन की अपेक्षा निम्नतर (खराब) और ट्रेजेडी का श्रेष्ठतर (अच्छा) चित्रित करना है।

माध्यम के बाद तीसरा भेद अनुकरण का प्रकार या परिपाटी है। माध्यम और आलम्बन के एक होने पर भी अनुकरण के प्रकार (या शैली) में भेद हो सकता है। कवि, कथन (Narration) के द्वारा अनुकरण कर सकता है—ऐसी स्थिति में वह किसी दूसरे व्यक्ति का रूप ले सकता है या स्वयं कह सकता है—या वह अपने सभी पात्रों को सजीव चलते-फिरते (नाटकीय) रूप में उपस्थित कर सकता है।

अरस्तू के मतानुसार काव्योद्रेक के दो मूल कारण हैं जो हमारे स्वभाव के गंभीर अंतस् में वर्तमान हैं (काफी गहरे में रहते हैं)। प्रथम मूल कारण अनुकरण की सहजात प्रवृत्ति है जो मनुष्य में बचपन से ही बीजारोपित है। मनुष्य और दूसरे पशुओं में सबसे बड़ा भेद यह है कि वह जीवधारियों में सबसे अधिक अनुकरण करनेवाला है। अनुकरण द्वारा वह अपने आरम्भिक पाठ सीखता है, और अनुकृत वस्तुओं से प्राप्त आनंद किसी प्रकार कम सार्व-भौमिक नहीं है। स्वयं वे वस्तुएँ जिनको देखने में हमें पीड़ा होती है, जब यथावत् रूप में (चित्रित या) प्रस्तुत की जाती हैं तो उनका ध्यान कर हमें आनंद होता है। इसका कारण यह है कि केवल दार्शनिकों को ही नहीं प्रत्युत सर्वसाधारण को भी सीखने में बड़ा आनंद मिलता है। इस प्रकार मनुष्यों को जो किसी वस्तु की समानता (या अनुकृति) देखने में आनंद मिलता है उसका कारण यह है कि उसका ध्यान करते हुए वे अपने को सीखते हुए, या निष्कर्ष निकालते हुए और कदाचित् यह कहते हुए कि 'अहा यह वही है' पाते हैं। यदि आपने उस मूल वस्तु को नहीं देखा है तो आनंद अनु-करण के कारण न होकर उसकी विधि (सम्पन्नता), रंग या किसी अन्य कारण से होगा।

काव्योद्रेक का दूसरा मूल कारण (अनुकरण के साथ) 'सामंजस्य' या 'लय' की सहजात प्रवृत्ति है। छंद स्पष्टतया लय के रूप हैं। सामंजस्य और लय की स्वाभाविक प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तियों ने अपनी इस विशेषता

को धीरे-धीरे ऐसा विकसित किया कि उनकी सामान्य रचनाओं ने काव्य को जन्म दिया।

'ट्रेजेडी' और 'कमेडी' के विकास की बात करता हुआ अरस्तू कहता है कि काव्य, लेखकों के चरित्र (या रुचि) के अनुरूप, दो विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हुआ। गम्भीर व्यक्तियों ने अच्छे मनुष्यों के कार्यों का और उदात्त कार्यों का अनुकरण किया। हल्के किस्म के लोगों ने नीच व्यक्तियों के कार्यों का अनुकरण किया। इन लोगों ने व्यंग्य लिखे जब कि गम्भीर व्यक्तियों ने देवताओं की स्तुति और विख्यात पुरुषों की प्रशंसा की। इस प्रकार जब 'ट्रेजेडी' और 'कमेडी' का रूप विकसित हुआ तो व्यंग्य लिखनेवाले 'कमेडी' के लेखक बन गए और प्रबंध-काव्य (या महाकाव्य) के रचयिताओं की जगह पर 'ट्रेजेडी' के लेखक आ गए।

'कमेडी' निम्नतर प्रकार के चरित्रों का अनुकरण है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे खराब हैं, प्रत्युत हास्योत्पादक हैं जो कि कुरूपता का भेद है। हास्योत्पादन किसी प्रकार की कमी या कुरूपता में है जो पीड़ाकारक या नाशकारक नहीं है। उदाहरणतः प्रहसन का चेहरा (Mask) कुरूप और बिगड़ा हुआ होता है, किंतु इससे पीड़ा का संकेत नहीं मिलता। 'कमेडी' का कोई इतिहास नहीं मिलता, क्योंकि शुरू में इस पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया।

'एपिक' (महाकाव्य) और 'ट्रेजेडी' में समानता और भेद दोनों हैं। 'एपिक' (महाकाव्य) की 'ट्रेजेडी' से इस बात में समानता है कि इसमें पद्य में उच्च प्रकार के चरित्रों का अनुकरण होता है। दोनों में भेद यह है कि महाकाव्य में एक ही प्रकार के छंद का प्रयोग होता है और उसका स्वरूप कथनात्मक (Narrative) है। दोनों में विस्तार का भेद भी है। 'ट्रेजेडी' यथासंभव अपने को सूर्य की एक परिक्रमा (अर्थात् चौबीस घंटे) तक (या कभी-कभी थोड़े अधिक तक) सीमित रखती है, जब कि महाकाव्य के कार्य के लिए समय की कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार महाकाव्य के तो सभी तत्त्व 'ट्रेजेडी' (दुःखांत नाटक) में मिलते हैं किंतु 'ट्रेजेडी' के सब तत्त्व महाकाव्य में नहीं मिलते।

'ट्रेजेडी' (दुःखांत नाटक) की परिभाषा देते हुए अरस्तू कहते हैं कि "ट्रेजेडी कार्य (Action) का अनुकरण है, जो (कार्य) गंभीर, पूर्ण और कुछ भव्यता लिए हुए हैं, ऐसी भाषा में (अनुकरण) है जो कि प्रत्येक प्रकार के अलंकरण से विभूषित है (और) जिसके प्रत्येक प्रकार नाटक के अलग-अलग भाग में पाए जाते हैं, जो (अनुकरण) कथनात्मक (Narrative) रूप में न होकर कार्यरूप (Action) में है, जो करुणा और भय के द्वारा इन भावों का समुचित रेचन (Purgation) उपस्थित करती है। 'विभूषित भाषा' से मेरा तात्पर्य उस भाषा से है जिसमें 'लय', 'सामंजस्य' और गीत का समावेश होता है। 'अलग-अलग भाग में प्रत्येक प्रकार' से मेरा आशय यह है कि कुछ भाग केवल पद्य के माध्यम से रचित हैं और दूसरे गीत की सहायता से।"

प्रत्येक ट्रेजेडी के छः आवश्यक अंग हैं—वस्तुविषय (Plot), पात्र या चरित्र (Character), पदविन्यास (Diction), विचार (Thought), दृश्य (Spectacle), गीत (Song)। इनमें से गीत और पदविन्यास का अनुकरण के माध्यम से संबंध है, दृश्य का अनुकरण के प्रकार से संबंध है, और शेष तीन (वस्तुविषय, पात्र, विचार) का अनुकरण के आलम्बन से संबंध है।

इनमें वस्तुविषय या घटनाओं का संविधान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि 'ट्रेजेडी' (या दुःखांत नाटक) मनुष्यों का अनुकरण न होकर कार्य और जीवन का अनुकरण है, और जीवन कार्य में है तथा उसका अंत कार्य का प्रकार (Mode) है, गुण या विशेषता नहीं। चरित्र मनुष्यों की विशेषता निर्धारित करता है, किंतु वे अपने कार्यों के द्वारा ही सुखी या दुखी रहते हैं। इसलिए नाटकीय कार्य (Action) चरित्र-चित्रण के उद्देश्य से नहीं रहता। चरित्र की स्थिति कार्यों के बाद और गौण है। इसलिए घटनाएँ और वस्तुविषय 'ट्रेजेडी' के उद्देश्य हैं। और यह भी कि कार्य के बिना 'ट्रेजेडी' नहीं हो सकती, किंतु चरित्र के बिना हो सकती है। यदि आप पदविन्यास और विचार की दृष्टि से अत्यन्त परिमार्जित, चरित्र को व्यक्त करनेवाले भाषणों की शृंखला सुसंबद्ध कर दें, तो भी आप 'ट्रेजेडी' का

वह मुख्य प्रभाव न उत्पन्न कर सकेंगे जो ऐसे नाटक से उत्पन्न होगा जो इन दृष्टियों से हीन होकर भी घटनाओं के कलात्मक विधान और वस्तुविषय से युक्त है। इनके अतिरिक्त, 'ट्रेजेडी' में भावों के आकर्षण या दिलचस्पी के मुख्य तत्त्व--स्थिति का विपरिणाम (Peripeteia) और प्रत्यभिज्ञा दृश्य (Recognition Scenes)--वस्तुविषय के अंग (या भाग) हैं। इसलिए वस्तुविषय का सिद्धांत सर्वप्रथम और सर्वोपरि है और वह 'ट्रेजेडी' की आत्मा है। चरित्र का स्थान द्वितीय है। चरित्र मनुष्य की रुचि या विरक्ति की वस्तुओं को दिखलाता हुआ नैतिक उद्देश्य या प्रयोजन का उद्घाटन करता है। इसलिए वे भाषण, जो इसे स्पष्ट नहीं करते या जिनमें वक्ता किसी वस्तु का चुनाव या त्याग बिलकुल नहीं करता, चरित्र के उद्घाटक नहीं हैं।

इस क्रम में तीसरा स्थान विचार का है--अर्थात् स्थिति-विशेष में, जो उपयुक्त या सम्भाव्य है, उसे कहने की शक्ति या प्रतिभा। विचार वहाँ मिलता है जहाँ किसी वस्तु की सत्ता या उसका अभाव प्रमाणित किया जाता है, या जहाँ किसी सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है।

उक्त तत्त्वों में चौथा स्थान पदविन्यास का है। इससे मेरा तात्पर्य शब्दों में अर्थ का अभिव्यंजन है। इसका सार-तत्त्व (Essence) गद्य और पद्य दोनों में समान है।

शेष तत्त्वों में गीत का अलंकरणों के बीच मुख्य स्थान है।

दृश्य का अपना भावात्मक आकर्षण है। किंतु सभी तत्त्वों में यह सबसे कम कलात्मक है और काव्यकला से सबसे कम संबद्ध है। 'ट्रेजेडी' की शक्ति का अनुभव दृश्य-विधान और अभिनेताओं के बिना भी होता है। इसके अतिरिक्त, दृश्यविधान का प्रभाव कवि की अपेक्षा, रंगमंच के मशीनियों (machinist) या यंत्र-संचालकों पर अधिक आश्रित है।

'ट्रेजेडी' के आवश्यक तत्त्वों का संक्षिप्त परिचय देकर अरस्तू 'ट्रेजेडी' के मुख्य तत्त्व वस्तुविषय की सम्यक् रचना का विवेचन करते हैं। 'ट्रेजेडी' की परिभाषा देते हुए अरस्तू ने कहा है कि 'ट्रेजेडी कार्य का अनुकरण है जो (कार्य) पूर्ण और मुकम्मिल (complete and whole) है और कुछ भव्यता लिए है, क्योंकि पूर्ण भव्यताविहीन भी हो सकता है। पूर्ण वह है जिसका

आरम्भ, मध्य और अंत है। सुरचित वस्तुविषय (Plot) का न तो अनायास (haphazard) आरम्भ होना चाहिए और न अन्त, किन्तु उसे इन सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए।

भव्यता के संबंध में अरस्तू का कहना है कि सुंदर वस्तु के (लिए) अंगों का केवल व्यवस्थित विधान ही न होना चाहिए प्रत्युत उसमें कुछ भव्यता (magnitude) भी होनी चाहिए, क्योंकि सौंदर्य भव्यता और व्यवस्था (order) पर आश्रित रहता है। बहुत ही छोटा पशु सुंदर नहीं हो सकता, क्योंकि समय के अत्यधिक लघु क्षण में देखे जाने के कारण उसका दर्शन अस्पष्ट (confused) होता है। इसी प्रकार विशालकाय पशु भी सुंदर नहीं हो सकता, क्योंकि आँख संपूर्ण को एक साथ हृदयंगम नहीं कर सकती और दर्शक उसके ऐक्य और पूर्णता की भावना से वंचित रह जाता है। जिस प्रकार कि जीवधारियों के लिए कुछ भव्यता की आवश्यकता है जो एक दृष्टि में आ सके उसी प्रकार वस्तुविषय के लिए भी थोड़ा प्रसार आवश्यक है—ऐसा प्रसार जो स्मृति द्वारा सुगमतापूर्वक अपनाया जा सके। भव्यता की समुचित सीमा उसे कहा जा सकता है जिसके भीतर घटनाओं के क्रम में, सम्भावना (Probability) और आवश्यकता (Necessity) के नियम के अनुसार, दुर्भाग्य से सौभाग्य और सौभाग्य से दुर्भाग्य का परिवर्तन समाविष्ट हो सके।

कथानक की एकता के संबंध में अरस्तू का कहना है कि जिस प्रकार अन्य अनुकरणात्मक कलाओं में अनुकरण एक है, यदि अनुकृत वस्तु एक है, उसी प्रकार कार्य का अनुकरण होने के कारण, वस्तुविषय को एक कार्य का और पूर्ण कार्य का अनुकरण करना चाहिए—विविध अंगों की रचनात्मक एकता इस प्रकार की होनी चाहिए कि यदि उनमें से एक निकाल दिया जाय तो पूर्ण (whole) असंघटित और अव्यवस्थित हो जाय, क्योंकि जिसके रहने न रहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता उसमें पूर्ण का अंगांगि-भाव (organic) नहीं है।

इतिहास और काव्य का भेद प्रदर्शित करते हुए अरस्तू का कहना है कि कवि का काम यह नहीं है कि जो घटित हो गया है उसे कहे बल्कि जो हो

सकता है उसे कहे--जो संभावना और आवश्यकता के नियम के अनुसार संभाव्य हो। इतिहास और काव्य में सच्चा भेद यह है कि "एक (इतिहास) जो हो गया है उसका वर्णन करता है और दूसरा (काव्य) उसका वर्णन करता है जो घटित हो सके। काव्य इसलिए अधिक दार्शनिक है और इतिहास से उच्चतर वस्तु है, क्योंकि काव्य विश्वक या सार्वभौमिक की अभिव्यक्ति करता है और इतिहास विशिष्ट की। सार्वभौमिक से मेरा आशय है कि एक विशिष्ट प्रकार का मनुष्य स्थिति (विशेष) में संभावना और आवश्यकता के नियम के अनुसार किस प्रकार बोलेगा या काम करेगा। पात्रों को दिए गए नामों में काव्य का लक्ष्य यही सार्वभौमिकता है······जो संभाव्य है वह विश्वसनीय है।"

वस्तुविषय या घटनाओं में वे काव्य सबसे हीन हैं जिनकी घटनाएँ या क्रियाएँ बिना संभाव्य या आवश्यक क्रम के एक के बाद दूसरी आती हैं।

'ट्रेजेडी' केवल पूर्ण कार्य का ही अनुकरण नहीं है प्रत्युत त्रासकारी (Terrible) और करुण घटनाओं का भी। ऐसा प्रभाव सबसे अच्छा तब उत्पन्न होता है जब घटनाएँ अचानक होती हैं। उनका प्रभाव तब और भी बढ़ जाता है जब वे इसके साथ कार्य-कारण के रूप में आती हैं। उनके स्वतः या घटनावश होने की अपेक्षा, ऐसे में, करुणामय आश्चर्य या करुण आश्चर्य (Tragic Wonder) अधिक होगा।

वस्तुविषय (Plot) या तो साधारण (Simple) होते हैं या गुंफित (Complex), क्योंकि वास्तविक जीवन के कार्य भी--वस्तुविषय जिनके अनुकरण हैं--ऐसे ही भेद प्रदर्शित करते हैं। वह कार्य जो एक है और सतत (continuous) है, साधारण कहा जाता है, जब कि भाग्य का परिवर्तन बिना स्थिति के विपरिणाम (Reversal of the Situation) और प्रत्यभिज्ञा के होता है।

गुंफित कार्य वह है जिसमें परिवर्तन 'स्थिति के विपरिणाम' या प्रत्यभिज्ञा या इन दोनों से समन्वित होता है। इनको कथावस्तु की आन्तरिक रचना से प्रस्तुत होना चाहिए, जिससे जो उत्तर रूप में आए वह पूर्ववर्ती घटनाओं का आवश्यक या संभाव्य परिणाम हो।

'स्थिति का विपरिणाम (Reversal of the Situation) वह परिवर्तन है जिसके द्वारा कार्य—संभावना और आवश्यकता के नियम के सदा वशवर्ती होकर—विपरीत स्थिति को प्राप्त हो जाता है। प्रत्यभिज्ञान (Recognition), कवि द्वारा सौभाग्य या दुर्भाग्य के लिए निर्णीत पात्रों में, प्रेम या घृणा उत्पन्न करता हुआ, अज्ञान से ज्ञान में परिवर्तन है। प्रत्यभिज्ञा का उत्कृष्टतम रूप वह है जो स्थिति के विपरिणाम से संयोजित हो। अत्यन्त साधारण निर्जीव वस्तुएँ भी प्रत्यभिज्ञा का विषय हो सकती हैं। किंतु वस्तु-विषय और कार्य से घनिष्ठता से संबद्ध प्रत्यभिज्ञा, व्यक्तियों की प्रत्यभिज्ञा है। स्थिति के विपरिणाम से समन्वित होकर प्रत्यभिज्ञा या तो करुणा को जन्म देगी या भय को। 'ट्रेजेडी' ऐसे ही प्रभाव उत्पन्न करनेवाले कार्यों का चित्रण करती है।

कथावस्तु या वस्तुविषय के दो अंग (या भाग)—स्थिति का विपरिणाम और प्रत्यभिज्ञा—आश्चर्य (Surprise) पर आधारित हैं। तीसरा अंग 'दुःखद घटना' (Tragic Insidence) है। 'दुःखद घटना' नाशकारी या पीड़ामय कार्य है, जैसे रंगमंच पर मृत्यु, शारीरिक पीड़ा, घाव आदि।

कथावस्तु या वस्तुविषय की रचना में कवि का क्या लक्ष्य होना चाहिए और उसे किन चीजों से बचाना चाहिए यह बताते हुए अरस्तू का कहना है कि उत्कृष्ट ट्रेजेडी का वस्तुविषय साधारण न होकर गुम्फित होना चाहिए। करुणा और भय के उत्पादन के संबंध में उसका कहना है कि करुणा का उस दुर्भाग्य से जन्म होता है जिसके हम अधिकारी नहीं हैं और भय अपने जैसे मनुष्यों के दुर्भाग्य से। पुण्यात्मा व्यक्ति का दुर्भाग्य हममें करुणा न उत्पन्न कर हमें स्तब्ध कर देता है। दुष्ट व्यक्ति का सौभाग्य न हमारे नैतिक भाव को तुष्ट करता है और न भय या करुणा उत्पन्न करता है। दुष्ट का पतन नैतिक भाव को तो संतुष्ट करता है, किंतु न करुणा पैदा करता है न भय। अब केवल ऐसे व्यक्ति का चरित्र रह जाता है जो यद्यपि अत्यधिक पुण्यात्मा और न्यायशील नहीं है फिर भी जिसका दुर्भाग्य किसी दुर्गुण या अनैतिकता से घटित न होकर किसी गलती (त्रुटि) या दुर्बलता के फलस्वरूप उपस्थित होता है, इसलिए अच्छे सुगठित वस्तुविषय का एक ही उद्देश्य (Issue) होना चाहिए,

दुहरा नहीं। भाग्य-परिवर्तन बुरे से अच्छे की ओर न होकर अच्छे से बुरे की ओर होना चाहिए और यह, बुरे की अपेक्षा अच्छे पात्र के या उपर्युक्त पात्र के दुर्गुण के कारण न होकर किसी बड़ी गलती या दुर्बलता के परिणाम-स्वरूप होना चाहिए।

भय और करुणा दृश्यात्मक विधान द्वारा भी उत्पन्न किए जा सकते हैं किंतु उनका कृति की आन्तरिक रचना से उत्पन्न होना अधिक उत्कृष्ट है और उच्च कोटि के कवि की सूचना देता है। जब दुःखद घटना उन लोगों के बीच होती है जो एक दूसरे के निकट या प्रिय हैं—जैसे भाई भाई को, पुत्र पिता को, माँ बेटे को, बेटा अपनी माँ को मार डालता है या मार डालना चाहता है, या इसी प्रकार का कोई दूसरा कार्य—कवि को ऐसी स्थितियों की खोज करनी चाहिए, ऐसी स्थितियाँ भयपूर्ण या करुणापूर्ण प्रतीत होती हैं। कार्य जान-बूझकर किया जा सकता है, या भयानक कार्य अनजान में किया जा सकता है और मित्रता या संबंध का अनुसंधान या पता बाद में लगे। तीसरी स्थिति यह है कि जानकर काम करनेवाला हो और फिर न करे। चौथी स्थिति यह है कि कोई अनजान में असमाधेय (Irreparable) कार्य करनेवाला हो किन्तु कार्य करने के पहले जान जाय। इनमें से व्यक्तियों को जानता हुआ करनेवाला बनकर फिर कार्य न करना सबसे बुरा तरीका है। यह दुःखद (Tragic) न होकर स्तब्धकारी है क्योंकि विनाश (Disaster) नहीं होता, सबसे अच्छा तो यह है कि कार्य अनजान में कर डाला जाय—और पता या अनुसंधान (Discovery) बाद में लगे। यह हमें स्तब्ध नहीं करता और अनुसंधान आश्चर्यकारी प्रभाव डालता है।

चरित्र के संबंध में अरस्तू का कहना है कि चार चीजों की ओर लक्ष्य होना चाहिए। सर्वप्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि चरित्र अच्छा हो। जिस भाषण या कार्य से किसी प्रकार के नैतिक प्रयोजन (Moral purpose) का उद्घाटन हो वह चरित्र का अभिव्यंजक है। यदि प्रयोजन अच्छा है तो चरित्र अच्छा होगा।

दूसरा लक्ष्य औचित्य का होना चाहिए। मर्दानगी का (अपना) एक रूप होता है किंतु स्त्री में मर्दानगी या निरंकुश चालाकी अनुचित है।

चरित्र को जीवन के प्रति सच्चा होना चाहिए। यह अच्छाई और औचित्य से अलग या विशिष्ट (वस्तु) है।

चौथी चीज रूपैक्य (Consistency) है। यदि पात्र ढुलमुल हो तो उसे सतत ढुलमुल होना चाहिए।

वस्तुविषय की रचना के समान ही, चरित्र-चित्रण में, कवि का लक्ष्य या तो आवश्यक की ओर या संभाव्य की ओर होना चाहिए। इस तरह एक विशिष्ट प्रकार के चरित्र को, आवश्यकता या संभावना के नियम के अनुसार, विशिष्ट प्रकार से बोलना या कार्य करना चाहए। इससे स्पष्ट है कि वस्तु-विषय के गुम्फन के समान ही उसका उद्‌घाटन वस्तुविषय से ही प्रसूत हो, किसी यांत्रिक माध्यम (Deus ex Machina) से न समुपस्थित हो। यांत्रिक माध्यम का केवल नाटक से बाहर की घटनाओं के लिए उपयोग हो—उन पूर्ववर्ती या अनुवर्ती घटनाओं के लिए जो मानव-ज्ञान की परिधि के परे हैं, जिनकी सूचना या पूर्व-चेतावनी आवश्यक है। हम देवताओं में सब कुछ देखने की शक्ति मानते हैं। कार्य (Action) में कुछ भी अबौद्धिक (Irrational) न होना चाहिए। यदि इस अबौद्धिक (Irrational) का निराकरण न हो सके तो इसे 'ट्रेजेडी' की सीमा से बाहर होना चाहिए।

चूँकि 'ट्रेजेडी' उन व्यक्तियों का अनुकरण है जो सामान्य स्तर से ऊँचे हैं, (उनके संबंध में) अच्छे रूप-चित्रकार (Portrait Painter) के उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए। इसी प्रकार, कवि को उन व्यक्तियों के चित्रण में—जो चंचल (Irascible) या आलसी हैं या जिनमें चरित्र की दूसरी कमियाँ (त्रुटियाँ) हैं—प्रकार को सुरक्षित रखते हुए उसका उदात्तीकरण करना चाहिए।

कवि को इन नियमों का पालन करना चाहिए। उसे भावों (Senses) को प्रिय लगनेवाली चीजों की उपेक्षा न करनी चाहिए, क्योंकि यद्यपि वे प्रधान या मुख्य नहीं हैं फिर भी काव्य की सहवर्ती (Concomitants) हैं।

इसके बाद अरस्तू प्रत्यभिज्ञा (Recognition) के प्रकारों का परिगणन करते हैं।

पहला किन्तु सबसे कम कलात्मक——जिसका कि पटुता के अभाव में सामान्यतया सबसे अधिक प्रयोग होता है——चिह्नों द्वारा प्रयोग प्रत्यभिज्ञा है। इनमें से कुछ जन्मजात होते हैं। कुछ जन्म के बाद प्राप्त होते हैं। इनमें से कतिपय शारीरिक चिह्न हैं। कुछ बाह्य निशानी हैं, जैसे गले की माला आदि।

दूसरा प्रयोग कवि द्वारा मनमानी आविष्कृत प्रत्यभिज्ञा है और इस कारण उनमें कलात्मकता का अभाव है। तीसरा प्रकार स्मृति पर आश्रित है जब कि किसी वस्तु का दर्शन, भावना को जागरित करता है। चौथा प्रकार तर्क के आश्रय से है। जैसे मुझसे मिलता-जुलता कोई आया है, ओरेस्टेस के अतिरिक्त मुझसे किसी की समानता नहीं है; इसलिए ओरेस्टेस आया है।

इन सब प्रकार की प्रत्यभिज्ञाओं में सर्वोत्तम वह है जो घटनाओं से ही प्रसूत होती है, जहाँ आश्चर्यकारी अनुसंधान स्वाभाविक साधनों द्वारा होता है। इसके बाद तर्क के आश्रित प्रत्यभिज्ञा का स्थान है।

वस्तुविषय की, समुचित पदविन्यास द्वारा रचना करते हुए, कवि को, दृश्य को यथासंभव अपनी आँखों के सामने रखना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु को मानो दर्शक के समान अत्यन्त स्पष्टता से देखते हुए वह जान जायगा कि क्या इसके अनुरूप है और असंबद्धताएँ (Inconsistencies) उसकी नजरों से न बच पाएँगी।

दूसरे, कवि को यथाशक्ति समुचित मुद्राओं द्वारा अपने नाटक का निर्माण करना चाहिए, क्योंकि जिन्हें भावों की अनुभूति होती है वे अपने चित्रित पात्रों से स्वाभाविक सहानुभूति के कारण, अत्यधिक विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। इसलिए काव्य या तो प्रकृति का आनंददायी उपहार है या पागलपन का रूप——ऐसा संकेत उसमें (काव्य में) निहित है। एक (काव्य) में मनुष्य किसी चरित्र का रूप धारण कर सकता है, दूसरे (पागलपन) में वह आपे से बाहर रहता है।

प्रत्येक 'ट्रेजेडी' के दो भाग होते हैं——गुम्फन तथा उद्‌घाटन। गुम्फन में वह सब है जो कार्य के आरम्भ से चलता है और वह अंश जहाँ से कि घटना दुर्भाग्य या सौभाग्य की ओर मुड़ती है। उद्‌घाटन वह है जो परिवर्तन (या घटना के मोड़) से शुरू होकर अन्त तक चलता है।

चार प्रकार की ट्रेजेडी ह—गुम्फित (Complex) जो पूर्णतया स्थिति के विपरिणाम और प्रत्यभिज्ञा पर आश्रित है; करुण (Pathetic) जिसका उद्देश्य भावावेश (Passion) है; नैतिक, जिसका उद्देश्य नैतिक है; चौथा प्रकार सामान्य (Simple) है। यदि संभव हो तो कवि को सभी काव्यगुणों का समावेश करना चाहिए, अन्यथा अधिकाधिक संख्या का और उनका जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हों।

'ट्रेजेडी' को महाकाव्य का रूपविधान न देना चाहिए। महाकाव्य के रूपविधान (Structure) से तात्पर्य कथानकों की बहुतायत से है। महाकाव्य में विस्तार के कारण प्रत्येक अंश समुचित भव्यता प्राप्त कर लेता है। नाटकों में (ऐसा करने से) कवि की आशा के विपरीत परिणाम होता है।

सहगान (Chorus) को भी अभिनेताओं में से एक समझना चाहिए। इसे पूर्ण का अविभिन्न अंग होना चाहिए और कार्य में भी योग देना चाहिए।

अब पदविन्यास (Diction) और विचार (Thought) के संबंध में कहना है। विचार के अन्तर्गत उन सभी प्रभावों का समावेश है, जिन्हें भाषण द्वारा उत्पन्न करना है; इनके भाग हैं—प्रमाण और निराकरण, करुणा, भय, क्रोध आदि भावनाओं का उद्दीपन, महत्त्व या हीनता का संकेत।

पदविन्यास (Diction) की एक शाखा का अभिव्यंजन के प्रकार से संबंध है। इसका ज्ञान भाषण-कला के क्षेत्र के अन्तर्गत है। इसमें उदाहरणतः आदेश, प्रार्थना, कथन, धमकी, प्रश्न, उत्तर आदि का समावेश है। इनको जानने या न जानने से कवि की कला पर कोई गंभीर आक्षेप नहीं लगता।

शैली की पूर्णता, ओछेपन या हीनता (Mean) के बिना, निर्मल या शुद्ध (प्रसाद) होने में है। निर्मल (Clear) शैली वह है जो चलते हुए या उचित शब्दों का प्रयोग करती है; किन्तु इसके साथ वह हीन (Mean) भी है। वह पदविन्यास सामान्य स्तर से उठा हुआ और उच्च है जो असामान्य

शब्दों का प्रयोग करता है। किन्तु इस प्रकार के शब्दों से निर्मित शैली या तो पहेली बन जायगी या प्रलाप (Jargon) । इसलिए शैली के लिए इन तत्त्वों का सम्यक् समावेश आवश्यक है । असामान्य (या विरल) शब्द, लाक्षणिक, आलंकारिक या उपर्युक्त प्रकार के दूसरे (शब्द) इसे सामान्य या हीन स्तर से ऊपर उठा देंगे, जब कि समुचित शब्दों का प्रयोग इसे प्रसादगुण-सम्पन्न (Perspicuous) बना देगा।

अभिव्यंजन के इन विविध प्रकारों में औचित्य की परख (रखना) बहुत बड़ी बात है—समस्त शब्द, विरल शब्द इत्यादि। किन्तु सबसे बड़ी चीज लक्षणा पर अधिकार रखना है। यह प्रतिभावान् की निशानी है। अच्छी लक्षणा की रचना साम्य (विधान) की परख की नजर चाहती है।

महाकाव्य (काव्यात्मक अनुकरण) जो कथनात्मक स्वरूप धारण करता है और एक ही छंद का प्रयोग करता है उसके वस्तुविषय का निर्माण 'ट्रेजेडी' के समान नाटकीय सिद्धान्तों पर होना चाहिए । उसकी कथावस्तु का कार्य पूर्ण होना चाहिए। 'ट्रेजेडी' के समान इसके भी साधारण, गुम्फित, नैतिक और करुण चार प्रकार हैं। गीत और दृश्य को छोड़कर उसके अंग भी वे ही हैं। इसे भी 'स्थिति के विपरिणाम', 'प्रत्यभिज्ञा' और 'दु:खद घटना' की आवश्यकता है, विचार और पदविन्यास कलात्मक होना चाहिए। कवि को अपनी ओर से बहुत ही कम कहना चाहिए।

जहाँ पर कार्य का विराम हो, जहाँ चरित्र या विचार की अभिव्यक्ति हो, वहाँ पदविन्यास का अलंकरण या प्रसार हो, अन्यथा कांतिमय पदविन्यास से चरित्र और विचार धूमिल पड़ जाते हैं।

आश्चर्य के तत्त्व का ट्रेजेडी में समावेश होता है। महाकाव्य में अबौद्धिक के लिए—जिस पर आश्चर्य अपने मुख्य प्रभाव के लिए आश्रित रहता है—व्यापक अवकाश है, क्योंकि कार्य करता हुआ व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता।

कवि को असंभाव्य संभावनाओं की अपेक्षा संभाव्य असंभावनाओं को पसंद करना चाहिए।

अनुकर्ता होने के कारण, कवि वस्तुओं का अनिवार्यत: तीन में से किसी एक रूप में अनुकरण करेगा—वस्तुएँ जैसी कि वे थीं या हैं, वस्तुएँ जैसी कि

वे कही या सोची जाती हैं, वस्तुएँ जैसा कि उनको होना चाहिए। यथातथ्य (Correctness) का मानदंड काव्य और राजनीति के बीच उसी प्रकार एक नहीं है जिस प्रकार काव्य और अन्य कलाओं के बीच। काव्यकला में दो प्रकार की त्रुटियाँ होती हैं—जिनका कि सार-तत्त्व से संबंध है या जो तात्त्विक हैं और वे जो प्रासंगिक हैं।[1] अगर कवि असंभव का वर्णन करता है तो वह त्रुटि का दोषी है, किंतु त्रुटि क्षम्य है यदि उससे कला का उद्देश्य उपब्लध होता हो—यदि इस प्रकार काव्य के किसी अंग का प्रभाव अधिक चमत्कारी बन जाता हो।

यदि यह आपत्ति उठाई जाय कि वर्णन सच्चा नहीं है तो कवि उत्तर दे सकता है कि 'वस्तुएँ वैसी हैं जैसा उनको होना चाहिए।' इस प्रकार आपत्ति दूर हो सकती है। यदि चित्रण इन दोनों में से किसी प्रकार का न हो तो कवि कह सकता है कि 'आदमियों का कहना है कि वस्तु इस प्रकार की है।' यह देवताओं की कहानियों पर लागू होता है।

इस बात की परीक्षा करते हुए कि जो कुछ कहा गया है या किया गया है वह काव्यात्मकता की दृष्टि से ठीक है या नहीं, हमें केवल उस कार्य-विशेष या उक्ति-विशेष को ही नहीं देखना चाहिए। हमें इसका भी विचार करना चाहिए कि यह किसके द्वारा, किसके प्रति, कब, किसके हित में और किस उद्देश्य से कहा या किया गया है। क्या यह अधिक अच्छाई की उपलब्धि के लिए है या बड़ी बुराई को बचाने के लिए है ?

सामान्यतया असंभव को कलात्मक आवश्यकताओं या उच्च वास्तविकता या स्थिर जनमत की दृष्टि से प्रमाणित करना या सम्मान्य ठहराना आवश्यक है। कलात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से असंभव किन्तु संभाव्य वस्तु की अपेक्षा संभव असंभावना को पसंद करना चाहिए। 'हम कह सकते हैं कि असंभव ऊँची चीज है, क्योंकि आदर्श को वास्तविक से बढ़कर होना चाहिए।' अबौद्धिक को प्रमाणित या सम्मान्य ठहराने के लिए हम, (जनमत या)

---

१. यह न जानना कि हिरनी (Hind) के सींग नहीं होते, इतना गंभीर दोष नहीं है जितना उसका अकलात्मक चित्रण।

जो सामान्यतया कहा जाता है, उसकी बात करते हैं या उसकी शरण में जाते हैं। इसके साथ हम यह भी कहते हैं कि अबौद्धिक कभी-कभी तर्क या बुद्धि का उल्लंघन नहीं करता जैसे कि 'यह संभव है कि कोई वस्तु संभावना के विपरीत भी घटित हो जाय।'

जो वस्तुएँ विरोधी प्रतीत होती हैं उनकी उन्हीं नियमों से परीक्षा करनी चाहिए जिनका कि तार्किक प्रतिवाद (Dialectical Refutation) में आश्रय लिया जाता है—क्या उसी वस्तु से, उसी संबंध में और उसी अर्थ में आशय है? जो कुछ कवि स्वयं कहता है या जो बुद्धिमानों द्वारा गृहीत है उसे दृष्टि में रखकर इस प्रश्न का समाधान करना चाहिए।

अबौद्धिक और चारित्रिक अनैतिकता की निंदा उचित ही है यदि उनके समावेश की कोई आन्तरिक आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार आलोचनात्मक आपत्ति या विरोध के पाँच स्रोत हैं। उन वस्तुओं की निंदा की जाती है जो असंभव हैं या अबौद्धिक हैं या नैतिकता की दृष्टि से आघात पहुँचानेवाली हैं या विरोधी हैं, या कलात्मक यथातथ्य (Correctness) के विपरीत हैं। इनके उत्तर ऊपर दे दिए गए हैं।

'ट्रेजेडी' महाकाव्य से उत्कृष्ट है क्योंकि इसमें महाकाव्य के सभी तत्त्व हैं—यह महाकाव्य के छंद का भी प्रयोग कर सकती है। इसके पटन और अभिनय दोनों में सजीवता है। महाकाव्य के अनुकरण में ('ट्रेजेडी' की अपेक्षा) ऐक्य की कमी है। ट्रेजेडी इस प्रकार महाकाव्य से उत्कृष्टतर है।

इतना 'ट्रेजेडी' और "सामान्यतया महाकाव्य के संबंध में पर्याप्त है; उनके विविध प्रकार और अंग, प्रत्येक की संख्या और उनके भेद; अच्छी और बुरी कविता के बनानेवाले कारण; आलोचकों के विरोध और उन विरोधों के उत्तर........." (के संबंध में इतना कहना पर्याप्त होना चाहिए)।

—

होरेस की काव्यकला

(Ars Poetica)

होरेस के संबंध में कहा जाता है कि संसार में उसकी उद्धरणी सबसे अधिक दी जाती है। उसे अपने जीवन-काल में ही अपने प्रगीत मुक्तक (Lyrics Epodes) और व्यंग्य (Satires) के लिए मंजी मसेना, अगस्टस तथा रोमन जनता से पर्याप्त सम्मान और प्रतिष्ठा मिली, किन्तु मरण के पश्चात् उसकी एक लघु कृति 'पीसो को पत्र' (Epistle to Pisos) का योरुपीय आलोचना विशेषतया नाटकीय क्षेत्र पर जैसा व्यापक प्रभाव पड़ा वह सर्वथा आश्चर्यकारी है और अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' (Poetics) के बाद इसी पत्र का सबसे अधिक नाम लिया जाता है। 'पीसो को पत्र' 'काव्यकला' (Ars Poetica) के नाम से विख्यात हुआ। दान्ते, बेन जॉनसन और बायरन जैसे अनेक कलाकारों ने इस 'काव्यकला' को प्रदर्शक-पुस्तक (Guide Book) के रूप में अपनाया।

होरेस के काव्यसंबंधी उद्गार उसके व्यंग्यों[१] में भी बिखरे हुए मिल

१—एक व्यंग्य में वह कहता है कि मैंने कवि होने का दावा कभी नहीं किया। जिस व्यक्ति में प्रतिभा है, जिसका मस्तिष्क दूसरों की अपेक्षा अधिक स्फुरित (Inspired) है और अधिक उदार उद्गारों के लिए बना है उसको तुम इस नाम (कवि) का सम्मान दो।

"To the man who has genius, who has a mind inspired above others and lips framed for noble utterance—to him you may give the honour of that name." (Horace and His Lyric Poetry, p. 87)

एक दूसरे स्थल पर वह कहता है कि दूसरे काव्य के उच्च आकाश में उड़ते हैं, मैं नहीं। "बहुत सी आँधियाँ 'डर्स' के हंस को ऊपर उठाती हैं

जाते हैं जहाँ वह विनम्रता के साथ काव्य की उच्चता और अपनी असमर्थता घोषित करता है किन्तु ये उद्गार काव्यकला में की गई विवेचना के समक्ष दब जाते हैं।

'काव्यकला' ४७६ पंक्तियों का पत्र है, जो कालपरनियस पीसो (जो १५ ई० पू० में कांसल था) और उसके दो पुत्रों को लिखा गया था, जो कदाचित् अपूर्ण है और संभवतः कवि की मृत्यु के पश्चात् प्रकाश में आया। विद्वानों को इसमें सन्देह है कि होरेस-जैसे व्यवहार-कुशल और मर्मज्ञ कवि ने इस छोटी-सी कृति को 'काव्यकला' (Ars Poetica) जैसा विशाल शीर्षक दिया होगा। फिर भी यह पत्र 'काव्यकला' के नाम से ही विख्यात हुआ।

इस कृति के संबंध में सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि इसका रूप या प्रकार तो पत्र (Epistle) का है जो नाम को तो पीसो और उसके दो पुत्रों को संबोधित किया गया है किन्तु जो वस्तुतः पाठकवर्ग के लिये है। सारतः यह प्रवचन है जो एक (ही) वस्तु विषय (नाटक) का विवेचन करता है, किन्तु बातचीत के समान कभी एक पक्ष पर और कभी दूसरे पक्ष पर ध्यान देता है। इस प्रकार क्रम-व्यवस्था का अभाव जान-बूझकर है। वस्तु तथा विवेचना दोनों में यह यूनानी कृतियों से प्रभावित है, इसलिये वस्तु-विषय के पक्षों का चुनाव अनिवार्यतः कवि की अपनी रुचि का सदा प्रदर्शक नहीं है। यह कहा जा सकता है कि लेखक ने उन ग्रंथकारों से सहायता ली है जिनके साथ उसकी सहानुभूति थी।

विद्वान् इस निष्कर्ष पर आ गए हैं कि इस पत्र के लिखने में होरेस ने पेरियम के नियोप्टोलोमस के ग्रंथ से बड़ी सहायता ली है। पोरफीरियन ने

जब कि वह ऊँचा उड़ता है। मैं उस मक्खी की तरह, जो टाइबर के ढाल पर और कुंजों में परिश्रम से पराग एकत्र करती है, मेहनत के साथ गीत बनाता हूँ।"

"Many a gale uplifts the swan of Dirce so often as he soars..I, like a Matine bee that gathers sweet thyme with much labour, around the grove and slopes of watery Tibur humbly mould toilful songs." (Horace and His Lyric Poetry, p. 89)

इस पत्र के संबंध में लिखा है कि उसने (होरेस ने) इस कविता में पेरियम के नियोप्टोलोमस के सभी तो नहीं किन्तु अत्यन्त प्रमुख सिद्धान्त-वाक्यों को संगृहीत किया है। जेनसन का कहना है कि व्यवस्था-क्रम और सार-तत्त्व दोनों में होरेस ने इस आदर्श (Model) का अनुकरण किया है[१]। सम्राट् अगस्टस को जो पत्र उसने संबोधित किया उसमें होरेस ने समकालीन काव्य का उन लोगों के आक्षेपों के विरुद्ध समर्थन किया जो इटालियन लेखकों के प्राचीन सम्प्रदाय की अंधभक्ति करते थे।

अब प्रश्न यह उठता है कि होरेस-जैसे प्रतिभाशाली कवि और मर्मज्ञ ने अपने मौलिक विचार देने के बजाय किसी दूसरे की उद्धरणी क्यों कर दी और उसने काव्य के 'लिरिक', 'ओड' आदि के अपने क्षेत्र का—जिसमें वह अपनी अद्वितीय प्रतिभा का प्रमाण देता है—विवेचन न कर नाटकों की विवेचना की ओर क्यों प्रवृत्त हुआ ? एक अन्य स्थल पर वह कहता है कि यह सब उस काव्य की देवी का प्रसाद है। "तू सुनहले 'लायर' (वाद्य) के मधुर स्वरों को सँवारती है, तू यदि चाहे तो मूक मछलियों को भी हंस की आवाज दे सकती है। यह सब तेरा ही प्रसाद है कि मैं राहचलतों द्वारा उँगलियाँ उठाकर रोमन लायर के गायक रूप में दिखाया जाता हूँ। मुझमें जो स्फुरण (Inspiration) है और जो मनोरंजकता है, यदि मैं मनोरंजन करता हूँ, तो वह सब तेरा ही प्रसाद है[२]।" विद्वानों ने इस प्रश्न को उठाया है किन्तु वे कोई संतोषप्रद समाधान उपस्थित न कर सके। इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि होरेस ने नाटकों का सामान्य विवेचन इसलिए किया कि 'यूनानी युग' (Hellenistic Age) के आलोचक (Peripatetics)

---

१. Horace and His Lyric Poetry, pp. 95-96.

२. "O thou Pierian maid that attunest the sweet sounds the golden lyre, O thou that, if thou wilt, canst give even to dumb fishes the voice of the swan, it is all the gift that I am pointed out by the fingers of the passers-by as the bard of the Roman lyre: that is I have inspiration and please, if please I do, is all thy gift." (Horace and His Lyric Poetry, p. 94)

नाटयरूप के प्रति अधिक आकृष्ट थे जिनका मूल स्रोत अरस्तू का काव्यशास्त्र था। इस कविता में कुछ चीजें तो निश्चय ही नियोप्टोलोमस से ली गई हैं और कुछ का मूल न तो रोमन है और न होरेस का युग। इसलिए होरेस की इस कृति की रूपरेखा काव्य के शास्त्रीय ग्रंथों—विशेषतया नाटक—की रचना के समान है जिसका अरस्तू-पद्धति पर विकास किया गया है।

इस पत्र में क्रम-व्यवस्था के स्पष्ट अभाव को देखकर कॉलरिज ने इसे अव्यवस्थित प्रकीर्ण प्रकार (Unmethodical Miscelleny) कहा। सेंट्सबरी का कहना है कि ऊपरी दृष्टि से तो इस पत्र के सिद्धान्त-वाक्य अत्यन्त सुष्ठु और युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं, यद्यपि उनकी गंभीर समीक्षा के उपरान्त हाथ कुछ भी नहीं लगता, फिर भी उनका व्यापक प्रभाव लेखक की अद्वितीय शैली और कौशल के कारण है। गिलबर्ट का कहना है कि अध्ययन के अनंतर यह इतना अव्यवस्थित नहीं लगता जितना कि पहले प्रतीत होता है और इसके कई (स्थलों या) वाक्य-समूहों पर कवि की पर्यवेक्षण-शक्ति की छाप है और वे कवि की प्रतिभा से प्रदीप्त हैं।

संक्षेप में इस पत्र में निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्त प्रकट किए गए हैं—

(१) काव्य में एकान्विति और सरलता आवश्यक है।
(२) वस्तुविषय लेखक की शक्ति के अनुरूप और अनुकूल हो।
(३) अच्छी प्रवृत्तियों को अति की मात्रा तक न ले जाओ।
(४) अच्छे ब्योरे (समष्टि रूप में) खराब कृति को नहीं बचा सकते।
(५) अपनी सामग्री को सावधानी के साथ व्यवस्थित करो।
(६) सामान्य शब्द असामान्य संपर्क में अच्छे लगते हैं।
(७) नए शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। शब्दों का निर्णायक उनका चलन है।
(८) प्रत्येक रूप या प्रकार का तदनुरूप अपना छंद है।
(९) शैली वस्तुविषय या साहित्यिक प्रकार या रूप के उपयुक्त हो। वह भावों की अभिव्यक्ति के भी अनुरूप हो तथा पात्रों के अनुरूप हो।
(१०) पात्र परंपरागत तथा नव-निर्मित दोनों हो सकते हैं। परंपरा-प्राप्त

पात्र परंपरा के अनुरूप हों और नव-निर्मित पात्र एकरस (Self-consistent) हों।

(११) परंपरागत वस्तुविषय सुगम है किन्तु अंधानुकरण न हो।
(१२) आरम्भ चरम सीमा से न हो।
(१३) पात्रों की अवस्था को ध्यान में रखो।
(१४) उग्र (Violent) कार्यों को रंगमंच पर न दिखाओ।
(१५) पाँच अंक और तीन पात्र नाटक में हों, दैवी हस्तक्षेप अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर ही हो।
(१६) सहगान (Chorus) पात्र की तरह हो।
(१७) संगीत हल्का हो।
(१८) व्यंग्य नाटकों (Satyr Plays) में पात्रों के अनुरूप पदविन्यास बदलो।
(१९) छंद के विषय में सावधान रहो।
(२०) उदात्त ज्ञान (नैतिकता=Sapientia) उत्तम लेखन का रहस्य है।
(२१) सिद्धान्त कथन में संक्षिप्त हो।
(२२) कथा विश्वसनीय हो।
(२३) उत्तम काव्य अनुरंजन के साथ-साथ ऊपर उठाता है।
(२४) सदैव पूर्णोत्कृष्टता अप्राप्य है किन्तु कलात्मकता से हीन तुच्छ कवि असह्य है।
(२५) प्रतिभा तथा कलापक्ष दोनों आवश्यक हैं किन्तु कलापक्ष की प्रायः अवहेलना की जाती है।
(२६) स्पष्ट आलोचकों का उपयोग करो।
(२७) पागल कवि से दूर रहो या कवि में बौद्धिकता भी हो।

इन सिद्धान्तों को तीन कोटियों में परिगणित किया जा सकता है—(१) काव्य के वस्तुविषय से संबंधित, (२) काव्य की प्रक्रिया से संबंधित और (३) कवि से संबंधित। काव्य के वस्तुविषय से संबंधित सिद्धान्तों में एकान्विति का सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। होरेस का कहना है कि असंभव वस्तु या विग्रह (Figures) के समावेश पर पुस्तक उसी प्रकार हास्यास्पद हो जायगी जिस प्रकार कि कोई चित्रकार चित्र में मनुष्य के सिर में घोड़े की गर्दन जोड़

दे और सभी रंग के पंख उसके अंगों पर यत्र-तत्र लगा दे। इसका परिणाम यह होता है कि न सिर और न पैर किसी एक शक्ल के कहे जा सकते हैं और एकान्विति नष्ट हो जाती है। उसका कहना है कि 'संक्षेप में, अपना वस्तु-विषय तुम चाहे जैसा रखो केवल उसे सरल तथा एकरस (Consistent) रहने दो'[१]। यदि कला की भावना नहीं है तो त्रुटियों का निराकरण मात्र कतिपय और भी खराब दोषों की ओर ले जाता है[२]। इस प्रकार लॉनजाइनस के समान होरेस भी त्रुटिहीनता को उत्कृष्टता का पर्याय नहीं मानता। इसलिए होरेस लेखकों को सलाह देता है कि वे अपनी योग्यता और क्षमता के अनुरूप ही विषय का चुनाव करें। 'लेखको, उस विषय को तुम चुनो जो तुम्हारी शक्ति के अंदर है और अच्छी तरह सोच लो कि तुम्हारे कंधे क्या उठा सकते हैं और क्या नहीं, जो ठीक वस्तु-विषय चुनने की पूरी-पूरी कोशिश करता है उसे चुनिंदे शब्दों और स्पष्ट क्रम-व्यवस्था की कभी कमी न होगी'[३]।

काव्य की प्रक्रिया से संबंधित सिद्धान्तों का वस्तु-विस्तार काफी व्यापक है। उनमें क्रम-व्यवस्था, शब्द-संचयन, छंद, शैली की परिस्थिति तथा पात्रानुरूपता, परंपरा, मौलिकता, नाटक का इतिहास, करुण नाटक, व्यंग्य नाटक, संगीत आदि सभी के संबंध में कुछ न कुछ कहा गया है।

---

१. "In short, be your subject what you will, only let it be simple and consistent."

(Literary Criticism, Plato to Dryden, Allan.H. Gilbert, p.128.)

२. "If artistic feeling is not there, mere avoidance of a fault leads to some worse effect."

(Ibid, p. 129)

३. "You writers, choose a subject that is within your powers, and ponder long, what your shoulders can and cannot bear. He who makes every effort to select his theme aright will be at no loss for choice of words of lucid arrangement."

(Ibid. p. 129)

शब्द-संचयन के विषय में होरेस का कथन है कि लेखक को शब्दों के त्याग और स्वागत का पूरा अधिकार है। आवश्यकता पड़ने पर वह नए शब्दों का निर्माण कर सकता है। यह अधिकार उसे तब तक है जब तक कि उसका दुरुपयोग न किया जाय। 'समय की स्वीकृति की छाप लिए हुए नए शब्द को चलाने की सदा इजाजत रहेगी[१]।' उसका कहना है कि जिस तरह पत्तियाँ उगती और गिरती हैं उसी प्रकार शब्दों का आविर्भाव और तिरोभाव होता है। 'बहुत से अप्रयुक्त शब्द फिर से जीवित हो जाएँगे और जो आज प्रतिष्ठित हैं वे धूमिल पड़ जाएँगे, यदि चलन (या रिवाज) ऐसा ही चाहता है, जिसके (रिवाज के) हाथ में निर्णय, नियम या भाषा के स्तर (Standard) की शक्ति है[२]।'

छंद के संबंध में होरेस का कथन है कि विविध भावों की अभिव्यक्ति के लिए विविध छंद हैं और तदनुरूप उनका उपयोग होना चाहिए। इस अनुरूपता और उपयुक्तता को वह शैली के संबंध में बरतना चाहता है। उसका कथन है कि प्रतिभाशाली व्यक्ति की कृतियों में वस्तुविषय और शैली के सूक्ष्म भेद स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं। 'सुखान्त नाटक (Comedy) का विषय करुण छंद में व्यवहृत होने से इन्कार कर देता है[३]।'

शैली को पात्र, साहित्यिक प्रकार तथा स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। शैली को भावों के अनुरूप भी होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कि लेखक को उन भावों की अनुभूति हो। उसका कथन है कि 'काव्य का कलात्मक

---

१. "It has always been and always will be permissible to circulate a word stamped with the hall-mark of the day."
(Ibid. p. 130)

२. "Many a word long disused will revive, and many now high in esteem will fade, if Custom wills it, in whose power lie the arbitrament, the rule and the standard of language."
(Ibid.)

३. "A subject for comedy refuses to be handled in tragic verse." (Ibid.).

या ललित होना मात्र पर्याप्त नहीं है, उसे मुग्धकारी भी होना चाहिए और श्रोता के मन को इच्छानुसार आकृष्ट कर सकना चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य का चेहरा हँसी का जवाब हँसी से देता है उसी प्रकार आँसुओं का भी। यदि तुम मुझे रुलाना चाहते हो तो सबसे पहले तुम्हें स्वयं दु:ख का अनुभव करना चाहिए[१]।'

ऐसी शैली तभी स्पंदित हो सकती है जब कि शब्दों के चुनाव में काफी सावधानी रखी जाय। शब्द-चयन भावानुरूप हों। 'दु:ख भरे शब्द उदास चेहरे के उपयुक्त होते हैं। धमकीवाले शब्द क्रोधी के[२]।' प्रकृति पहले स्थिति के अनुरूप हमारे आन्तरिक भावों को बनाती है और वाणी की सहायता से उन भावों का अभिव्यंजन करती है। उसका कहना है कि यदि वक्ता के शब्द उसकी स्थिति के प्रतिकूल हुए तो सारा रोम हँसेगा।

परंपरा और मौलिकता के विषय में उसका कहना है कि नए विषय की अपेक्षा परंपरा-प्राप्त विषय का वर्णन सुगम है। होरेस केवल यही कहता है कि यदि नए विषय पर लेखनी चलाई जाय या नए पात्र का सर्जन किया जाय तो उसे एकरस (Consistent) होना चाहिए। उसे अन्त तक वैसा ही रहना चाहिए जैसा वह पहले सामने आया था। यदि परंपरा-प्राप्त चरित्र का चित्रण करना है तो उसे वैसा ही दिखाओ जैसा कि अनुश्रुति उसकी भावना करती आई है। मीडिया को तेज स्वभाववाली होना चाहिए, इनो को अश्रुपूर्ण, इक्सियन को गद्दार और ओरेस्तस को निराश।'

नाटकों की सफलता के लिए प्रत्येक अवस्था और स्वभाव की विशेषताओं का पर्यवेक्षण आवश्यक है। जो बच्चा केवल चल सकता है वह बड़ों के साथ

---

१. "It is not enough for poems to be fine; they must charm, and draw the mind of the listener at will, to the human face answers a smile with a smile, so does it wait upon tears; if you would have me weep, you must first of all feel grief yourself." (Ibid. p. 131)

२. "Sad words suit a gloomy countenance, meancing words an angry." (Ibid. p. 131.)

खेलना चाहता है। वह जल्दी ही नाराज होता है और शान्त हो जाता है। घंटे-घंटे पर उसका मन बदलता है। किशोर को शिक्षक के चले जाने पर घोड़ों और कुत्तों के बीच आनन्द मिलता है। युवावस्था में रुचि में परिवर्तन होता है। उसका लक्ष्य रुपया और मित्रता है। वह उच्च अभिलाषाओं का गुलाम होगा। बुढ़ापे के बहुत से कष्ट हैं, क्योंकि बूढ़ा आदमी बराबर धन एकत्र करता हुआ उसका आनन्द नहीं ले पाता। वह दीर्घ जीवन का लालची, लड़ाका, अतीत की प्रशंसा करनेवाला और उठती पीढ़ियों का कटु निंदक और आलोचक है। इस प्रकार प्रत्येक अवस्था का भिन्न स्वभाव होता है, जिसका लेखक को सदा ध्यान रखना चाहिए। 'कहीं बुड्ढे का अभिनय जवान को या जवान का अभिनय लड़के को न दे दिया जाय इसलिए यह अच्छा होगा कि हम जीवन की प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं को ध्यान में रखें[१]।'

नाटकों के कार्य के संबंध में होरेस का कहना है कि कार्य-व्यापार या तो रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है या उसके अन्यत्र घटित होने की सूचना दी जाती है। जो कानों के द्वारा मन में आता है उसका मस्तिष्क पर उतना सजीव प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसका जो दर्शक की आँखों के सामने घटित होता है, फिर भी सभी घटनाओं का रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाना उपयुक्त नहीं है। 'मीडिया' अपने बच्चों की हत्या न करे और बर्बर 'आत्रियस' दर्शकों के सामने मनुष्य का मांस न पकाए, प्रांरुने चिड़िया में और कैड्मस साँप में न बदल जाय। इस प्रकार से प्रस्तुत की गई चीज मेरी जुगुप्सा उद्दीप्त करती है और अविश्वसनीयता उत्पन्न करती है [अर्थात् जीवन की सारूप्यता (Verisimilitude) का प्रभाव, जो नाटक के लिए आवश्यक है, नहीं उत्पन्न हो पाता]।

नाटक के संबंध में होरेस का कहना है कि नाटक पाँच अंकों का होना चाहिए, न कम न ज्यादा। देवता का समावेश तब तक न हो जब तक कि कोई

---

१. "Lest an old man's part be given to a youth, or a man's part to a boy, we shall do wisely to dwell on the attributes proper to each period of life." (Ibid. p. 131)

ऐसी कठिनाई न आ जाय, जिसमें कि ऐसे निवारक की आवश्यकता अनिवार्य हो जाय [अर्थात् Deus ex Machina (बाह्य साधन या कर्ता) का यथा-संभव परित्याग], चौथे पात्र का समावेश न हो (अर्थात् केवल तीन पात्र हों), सहगान (Chorus) को अभिनेता का कर्तव्य सजीवता से करना चाहिए और अंकों के बीच में उसे ऐसा कुछ न गाना चाहिए जो कि कार्य को आगे न बढ़ाता हो, कथावस्तु में स्वाभाविक रूप से खप न जाता हो। 'सहगान को सत् का समर्थन करना चाहिए और अच्छी सलाह देनी चाहिए। जोशीले और क्रोधी को संयमित करना चाहिए। इसे सरल भोजन, न्याय के वरदान, नियम और शान्ति की प्रशंसा करनी चाहिए। यह रहस्य को गोपित रखेगा और आकाश (Heaven) से प्रार्थना करेगा कि समृद्धि दुखी के पास फिर से आए और घमंडी को छोड़ दे[१]।' नाटकों के विषय में होरेस ने यहाँ जो कुछ कहा है उससे ग्रीक नाट्य-परंपरा के प्रति पक्षपात और उसकी नैतिक मनोदृष्टि प्रकट होती है। पात्रों की संख्या के संबंध में उसका कथन रोमन प्रथा को छोड़-कर ग्रीक व्यवहार के प्रति उसकी रुचि को द्योतित करता है।

व्यंग्य नाटकों (Satyr Plays) के संबंध में उसका कहना है कि उसके नायक या देवता की बातचीत सराय (या चंडूखाने) की बातचीत के स्तर पर न पहुँच जाय। इन नाटकों में जो हँसी-मजाक हो वह शिष्टता को लिए हुए हो। यहाँ पर उसके एक कथन से इस बात का पता चलता है कि होरेस गरीबों की रुचि के समक्ष अमीरों की रुचि को पसंद करता है। उसका कहना है कि 'मेरी समझ में जब वन के देवता रंगमंच पर लाए जायँ तो गंदे और शर्मनाक मजाक न करें, क्योंकि जिनके पास घोड़ा या रियासत है उनको बुरा लगता है। वे न तो इसे पसंद करते हैं और न उन सभी चीजों पर इनाम

---

१. "The chorus must back the good and give sage counsel; must control the passionate and churlish; it must praise the thrifly meal, the blessings of justice, the laws and peace... It will respect confidences and implore heaven that prosperity may revisit the miserable and quit the proud."

(Ibid. p. 134.)

ही देते हैं जिनका कि भूने मटर और 'चेस्टनट' खरीदनेवाला समर्थन करता है[१]।'

इसके बाद होरेस जो कुछ कहता है उसका संबंध कवि से है। वह कवि में ज्ञान, बुद्धि और नैतिकता को आवश्यक बताता है। कवि के निर्माण में इन तत्त्वों की, विशेषतया नैतिकता की, आवश्यकता अनिवार्य है।

होरेस सबको सलाह देता है कि 'ग्रीक प्रकृष्ट ग्रंथों (Masterpieces) को दिन-रात पढ़ो[२]।' यह इसलिए कि ये ग्रंथ हमें आवश्यक शिक्षा देते हैं। उसका कथन है कि 'उत्तम लेखन का मूल स्रोत या रहस्य सम्यक् विवेक है। सुकरात के अनुयायियों की कृतियाँ तुम्हें तथ्य प्रदान करेंगी। इनको सुस्पष्ट दृष्टि से सामने रखो, शब्द स्वाभाविक गति से अनुसरण करेंगे[३]।' इस उद्धरण का पहला वाक्य कदाचित् कवि की उन्मत्तता के सिद्धान्त के विरुद्ध कहा गया है। इसमें काव्य की बौद्धिक विशेषता या गुण पर आग्रह किया गया है। दूसरे वाक्य में काव्य और नैतिकता का संबंध जोड़ा गया है और यह कहा गया है कि नैतिकता स्वतः काव्य की प्रेरक है। उससे कवि को अभिव्यंजक शब्द अपने-आप प्राप्त हो जाते हैं और उसे इस संबंध में कोई कठिनाई नहीं होती। होरेस की यह नैतिक मनोदृष्टि उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है जब वह

---

१. "In my judgment, when woodland Fauns are brought on to the stage they should...nor rap out filthing and shameful jests. For those who possess horse or estate take offence; nor do they receive with favour or award a crown to everything, the purchaser of fried peas and chestnuts may approve."

(Ibid. p. 135)

२. "Do you, my friends, study the greek masterpieces : thumb them day and night." (Ibid. p. 136)

३. "The secret of all good writing is sound judgment. The works of Socratics will supply you with facts : get these in clear perspective and the words will follow naturally."

(Ibid. p. 138)

यह कहता है कि 'एक बार जैसे मनुष्य ने मित्र और देश के प्रति अपने कर्तव्य को सीख लिया, माता-पिता, भाई या अतिथि के उसके प्रेम पर (प्राप्त) न्यायोचित अधिकारों को समझ लिया या सिनेटर या निर्णायक के कर्तव्यों को जान लिया—वैसे ही वह बिना किसी गलती के प्रत्येक पात्र या चरित्र को उसके उपयुक्त चारित्र्य या विशेषता (Part) प्रदान करना जान जायगा[१]।'

इसी नैतिक मनोदृष्टि से होरेस यूनानियों की प्रशंसा करता है और रोमवालों की निन्दा करता है। वह कहता है कि यूनानी केवल प्रशंसा के भूखे थे इसलिए काव्यदेवी ने उनको वाक्पटुता और प्रभावपूर्ण भाषा से समन्वित बनाया है। रोम के लोग पैसे के पीछे पागल हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में इनसे भला अच्छे काव्य की रचना क्या होगी। 'एक बार जहाँ इस लालच के कीट ने—रुपये पकड़ने की आदत ने—आत्मा को कुत्सित कर दिया फिर हम लोग यह आशा कैसे कर सकते हैं कि सुरक्षित रखने योग्य काव्य की रचना होगी[२]।'

इस पत्र का अत्यन्त लोकप्रिय, प्रभावपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण स्थल वह माना जाता है जहाँ होरेस कवि के लक्ष्य के विषय में अपने विचार प्रकट करता है। यहाँ उसने नैतिकता तथा अनुरंजन के सिद्धान्तों का संमिश्रण कर दिया। उसका कहना है कि 'कवि का उद्देश्य या तो हित करना है या अनुरंजन, या अनुरंजन तथा लाभ को एक में मिला देना। तुम चाहे जो पाठ पढ़ाओ, संक्षेप में कहो, जिससे तुम्हारे श्रोता जो कुछ कहा जा रहा है उसे जल्दी समझ जायँ और उसे

---

१. "Once a man has learned his duty to friend and fatherland the just claims of parent, brother, or guest on his love, the obligations of a senator or judge...he will infallibly know how to assign to each character its fitting part." (Ibid. p. 138)

२. "Once this canker of avarice, this money-grubbing, has tainted the soul, can we hope that poems will be written worthy of cedar oil and to be treasured in polished cases." (Ibid. p. 138)

धारण कर सकें। लबालब भरी हुई स्मृति से, प्रत्येक बेकार का शब्द छलक जाता है। आनन्द के लिए बनाई गई कथाएँ वस्तु-सत्य के निकट रहें। तुम्हारा नाटक असीम विश्वास की माँग न करे। बड़े लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं जिसमें कोई उपयोगी पाठ न हो, हमारे जवान रईस गंभीर पद्यों को नहीं स्वीकार करते। जो व्यक्ति हितकर को मधुरता से समन्वित करता है वह अपने पाठक को मुग्ध कर और साथ ही शिक्षा देकर बाजी मार ले जाता है। ऐसी ही पुस्तक प्रकाशक को धन देती है, विदेशों में भेजी जाती है और लेखक की ख्याति को बढ़ाती है[१]।'

होरेस ने यहाँ कवि की तैयारी या साधना और कवि के लक्ष्य के विषय में जो कुछ कहा है उससे वह काव्य के नैतिकता-परक होने के सिद्धान्त का समर्थन करता है। उसके उद्‌गारों का आग्रह है कि नैतिक ज्ञान पर आधारित सम्यक् नैतिकता कवि की पहली आवश्यकता है और उत्तम रचनाएँ वे हैं जो अनुरंजन भी करती हैं और ऊँचा उठाती हैं।

साहित्य की इस नैतिक भावना का स्रोत सोफियों (Sophists) के युग में पाया जा सकता है। प्लेटो की 'रिपब्लिक' (Republic) में उसका अतिवादी रूप देखने को मिलता है। अरस्तू ने यद्यपि इसके प्रतिरूप

१. "The poets aim is either to profit or to please, or to blend in one the delightful and the useful. Whatever the lesson you would convey, be brief, that your hearers may catch quickly what is said and faithfully retain it. Every superfluous world is spilled from the too-full memory. Fictions made to please should keep close to the truth of things; your play should not demand an unlimited credence. Elder folk rail at what contains no serviceable lesson ; our young aristocrats cannot away with grave verses, the man who mingles the useful with the sweet carried the day by charming his reader and at the same time instructing him. That's the book to enrich the publisher, to be posted overseas, and to prolong its author's fame." (Ibid. p. 139)

(करुण नाटकों के लिए) 'रेचन' का सिद्धान्त (Catharsis) रखा फिर भी उसकी नैतिक मनोदृष्टि के बीज 'काव्यशास्त्र' में मिल ही जाते हैं जो कि भविष्य में अच्छी तरह फले-फूले। इन सबका परिणाम यह हुआ कि लोग यह समझने लगे [जैसा कि प्लेटो के जार्जियस (Gorgias) और इसोक्रेट्स (Isocrates) के ऐंटीडोसिस (Antidosis) में निहित था और जैसा कि स्टोइक (Stoics) शिक्षा देते थे] कि अच्छे कवि को अच्छा आदमी होना ही चाहिए। कैटो (Cato) ने कहा कि अच्छा वक्ता अच्छा आदमी है जो बोलने में पटु है। स्त्राबो (Strabo) ने कहा कि 'पहले अच्छा आदमी बने बिना अच्छा कवि होना असंभव है। यह उस प्लेटानिक सिद्धान्त की गँज थी कि सद्गुण (Virtue) ज्ञान है। होरेस ने जो पहले यूनानी प्रकृष्ट ग्रंथों (Masterpieces) के दिन-रात अध्ययन और सुकरात के अनुयायियों के ग्रंथों के अवलोकन की बात कही उसका यह आशय नहीं था कि नाटककार उन्हीं ग्रंथों से सामग्री ले। उसका केवल इतना ही प्रयोजन है कि इसी प्रकार के ग्रंथ मानव-स्वभाव के पर्यवेक्षण की शिक्षा देते हैं और जीवन के प्रति सम्यक् मनोदृष्टि देते हैं, सच्ची नैतिकता देते हैं, जिसे कवि को अवश्य प्रतिबिंबित या अभिव्यंजित करना चाहिए। इस प्रकार कवि को सत् व्यक्ति होना चाहिए। इसके बाद दूसरा कदम यही है कि उसकी रचनाएँ हमें ऊपर उठानेवाली हों, हमारा उदात्तीकरण करें।

रोमवालों के उपयोगितावादी मस्तिष्क को यह (नैतिकतावादी) सिद्धान्त अवश्य ही रुचिकर लगनेवाला था, फिर भी यह न समझना चाहिए कि नैतिकतावादियों का साथ देकर होरेस ने उस युग में प्रचलित लोक-व्यापी सिद्धान्त को केवल स्वीकार किया। वस्तुतः बात ऐसी न थी। अरस्तू के अतिरिक्त और भी बहुत से यूनानी थे जो काव्य का उद्देश्य नीति-परक नहीं मानते थे। एरेतोस्थेनीज (Eratosthenes) ने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक कवि का लक्ष्य शिक्षा देना नहीं प्रत्युत मुग्ध करना होता है। स्वयं फिलोडेमस ने (जिसने कि नियोप्टोलोमस की नीतिपरक मनोदृष्टि की कड़ी आलोचना की थी) कहा कि काव्य का उद्देश्य नीतिपरक होना नहीं है। इससे हम यही कह सकते हैं कि जब होरेस ने पेरियम के नियोप्टो-

लोमस की कृति को अपने पत्र का आदर्श बनाया तो बहुत संभव है कि वह फिलोडेमस से अवगत था और यह भी जानता था कि वह नियोप्टोलोमस का उग्र विरोधी था, फिर भी उसने जान-बूझकर, सोच-समझकर, उसे अपनाया।

होरेस ने इस पत्र को अपने अंतिम वर्षों में लिखा है—उस समय जब कि वह दार्शनिक विषय और गंभीर चिंतन की ओर झुक रहा था। वह एक स्थल पर कहता है कि "मैं इसलिए पद्य-रचना और इस प्रकार की तुच्छ चीजें छोड़ रहा हूँ जो ठीक हैं और उपयुक्त हैं—वही मेरा अध्ययन, जिज्ञासा और चिंतन (का विषय) है। मैं सामग्री एकत्र कर रहा हूँ कि मैं जल्दी कुछ प्रस्तुत कर सकूँ[१]।" यह नयी मनोदृष्टि इम्मिश्च (Immisch) के मतानुसार इस पत्र की रचना के साथ ही विकसित हुई और उसने युवावस्था की विनोदप्रियता को हटाकर उसके स्थान पर गंभीर पक्ष को विवर्धित किया। कदाचित् इस कारण उसने फिलोडेमस की कड़ी आलोचना के बावजूद भी नियोप्टोलोमस को अपने पत्र का मुख्य आदर्श (Model) बनाया।

होरेस के एक अध्येता का कहना है कि 'वह (होरेस) नैतिकता को स्फुरण (Inspiration) के साथ मिला देने (या नैतिकता को स्फुरण का पर्याय समझने) की गलती करता है जो प्राचीन युग में सामान्य थी और आज भी अविज्ञात नहीं है[२]।'

वह यह भी कहता है कि 'वर्ड्स्वर्थ ने अपने लिरिकल बैलेड्स (Lyrical

---

१. "Now, therefore, I am laying aside verse and all other such trifling; what is right and seemly—that is my study and inquiry and all my thought. I am storing up and gathering material that I may soon produce." (Horace and His Lyric Poetry, p. 105)

२. "But he makes the mistake, common in antiquity and not unknown today, of mixing up morality with inspiration." (Ibid. p. 95)

Ballads) की भूमिका का केवल आधा ही पालन किया, होरेस ने 'पीसो के पत्र' का अर्धांश ही माना[१]।'

कवि के लक्ष्य की चर्चा करने के बाद होरेस पीसो के पुत्रों को बार-बार अभ्यास और सुधार करने की सलाह देता है। उसका कहना है कि 'बड़े से बड़े कवि में छोटी-मोटी त्रुटियाँ हो ही जाती हैं और वे क्षम्य हैं । किन्तु कवियों में हल्कापन (Mediocrity) या उनका अत्यन्त साधारण होना अक्षम्य है; वह न देवताओं को, न मनुष्यों को और न प्रकाशकों को सह्य है।' इसलिए वह पीसो के पुत्रों से कहता है कि यदि तुम कभी कुछ लिखो तो उसे पहले आलोचक मैसियस, अपने पिता या मुझे दिखा दो और फिर उसे अपनी डेस्क में दस वर्ष तक पड़ा रहने दो। बिना छपा हुआ तो हटाया जा सकता है किन्तु कहा हुआ शब्द वापस नहीं बुलाया जा सकता।

एक अन्य स्थल पर वह कहता है कि 'रेती (File दूसरे शब्दों में परिश्रम या अभ्यास) की मेहनत से बचना ठीक नहीं[२]।' वह पूछता है कि 'क्या तुम उस काव्य की निंदा करते हो जो कि समय और कई निराकरण

---

१. "Wordsworth only half obeyed the Preface to Lyrical Ballads, Horace only half obeyed the Epistle to the Pisos. (Ibid.p.87).

२. "Latium would not be mightier in valour or feats of arms than in letters,if only her poets, one and all did not scorn the long labour of the file." (Literary Criticism, p. 137.)

यहाँ पर गिलबर्ट का कहना है कि रेती का स्वीकार या परित्याग होरेस के युग और आज की रुचि की विभिन्नता सूचित करता है। यह उस समय भी अभिव्यक्त होता है जब आज के आलोचक यह कहते हैं कि वह चित्र अच्छा है जिसमें कि स्केच की विशेषताएँ बनी रहती हैं जो सावधान निष्पादन (Careful finishing) **में नष्ट हो जायँगी :**

"Acceptance or rejection of file perhaps marks the difference between the taste of the age of Horace and the present. It also expressed when critics of the present say a painting is good in that it preserves the qualities of the sketch, which may be lost in careful finishing." (Ibid.)

द्वारा काटा-छाँटा नहीं गया है—जो दस बार सुधारा नहीं गया है और नाखून तक सँवारा नहीं गया है[१]।'

होरेस इस प्रकार काव्य-रचना में परिश्रम और प्रतिभा दोनों को बराबर महत्त्व देता है। वह अकेले परिश्रम या अकेली प्रतिभा को पर्याप्त नहीं समझता। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथा दोनों का साहाय्यपूर्ण संयोग एक दूसरे के लिए आवश्यक है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। उसका कथन है कि 'अच्छा काव्य प्रकृति (अर्थात् प्रतिभा) का परिणाम है या कलात्मकता का यह विवादास्पद विषय है। मुझे तो पटुता के बिना अध्ययन का या बिना शिक्षा (संस्कार) के पटुता का कोई उपयोग नहीं दिखाई पड़ता। यह इतना सच है कि प्रत्येक दूसरे की (साहाय्यपूर्ण संयोग में) सहायता माँगता है[२]।'

होरेस यह भी सलाह देता है कि अपनी रचनाएँ सच्चे, निर्भीक और स्पष्टवादी मित्र और विशेषतया आलोचक को सुनाओ जिससे वह उनके दोषों को बता सके। अपनी रचना उन चाटुकारों को न सुनाओ जो मिथ्या प्रशंसा कर तुम्हें तुम्हारी त्रुटियों से अवगत नहीं कराते और फलतः तुमको दूसरों की नजर में मूर्ख बनवाते हैं। वह सच्चे आलोचक के कर्तव्य बताते हुए कहता है कि 'सहानुभूतिपूर्ण और समझदार आलोचक पद्यों की आलोचना करेगा जब वे शिथिल होंगे, उनकी निंदा करेगा जब वे ऊबड़-खाबड़ होंगे। कुरूप पंक्तियों पर वह काला निशान लगा देगा, बनावटी अलंकारों को वह निकाल देगा, अस्पष्टताओं को सुस्पष्ट करने को तुम्हें बाध्य करेगा, चिन्त्य पद-

---

१. "Do you O Pisos, sprung from Numa, censure the poem that has not been pruned by time and many a cancellation—corrected ten times over and finished to the finger-nail." (Ibid. p. 137)

२. "Whether a good poem be the work of nature or of art is a moot point. For my part I fail to see the use of study without wit or of wit without training, so true is it that each requires the other's aid in helpful union." (Ibid. p. 141)

समूह की आलोचना करेगा और जिसके बदलने की आवश्यकता है उस पर निशान लगा देगा। वह यह न कहेगा कि मैं अपने मित्र की इन छोटी-छोटी बातों के लिए क्यों निंदा करूँ, क्योंकि ये छोटी बातें उस कवि को शोचनीय स्थिति में डाल देती हैं जो कि बेवकूफ बनाया गया और अनुचित रूप से प्रशंसनीय हुआ[१]।'

होरेस आदर्श कवि या पूर्ण कवि का स्वरूप भी सम्मुख प्रस्तुत करता है। उसके मतानुसार कवि का दर्जा किसी से हीन नहीं है और उसके द्वारा बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न होते हैं। उसका कथन है कि 'द्रष्टा और गायक आरफियस ने बर्बर जंगली जातियों को हत्या और गंदे जीवन से विरत किया जिससे यह कथा है कि उसने चीतों तथा भयंकर सिंहों को पालतू बना दिया। यह भी कहा जाता था कि थीब्स का संस्थापक ऐम्फियन अपने लायर (वाद्य) की ध्वनि से पत्थरों को द्रवित कर देता था और अपने विनय के जादू से जहाँ चाहे ले जा सकता था। प्राचीन काल के कवियों का ऐसा ज्ञान था——मनुष्य तथा राष्ट्र, पवित्र (अर्थात् निजी) तथा सामान्य के बीच रेखा खींचना, नगर बनाना, अव्यवस्थित वासना को रोकना, विवाहितों के अधिकारों को निश्चित करना, लकड़ी पर नियमों का खुदाना। इस प्रकार दैवी कवियों और उनके गीतों को प्रशंसा और सम्मान प्राप्त हुआ——पद्यों में भविष्यवाणियाँ की गईं और जीवन का पथ प्रदर्शित किया गया——मनुष्य के परिश्रम को मधुर बनाने के लिए उत्सव बनाए गए। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि कहीं तुम काव्य-

---

१. "A kind and sensible critic will censure verses when they are weals, condemn them when they are rough; ugly lines he will score in black, will lop off pretentious ornaments, force you to clear up your obscurities, criticise a doubtful phrase and mark what needs a change. He will not say, why should I take my friend to task for mere trifles ? It is such trifles that will bring into sad scrapes the poet who has been fooled and flattered unfairly." (Ibid. p. 142.)

देवी और गीतों के राजा अपोलो से शर्मिन्दा न हो[१]।' यह उद्धरण काव्य की अन्योक्तिपरक व्याख्या (Allegorical interpretation of poetry) का उदाहरण है जो कि मध्ययुग (Middle Age) में बहुत प्रचलित थी। सिडनी और दान्ते दोनों ने इसकी ओर संकेत किया है और ऐसी ही व्याख्या की है।

अन्त में होरेस का कहना है कि पागल या असंतुलित कवि से बचो। 'जिस प्रकार लोग खुजली, पीलिया, पागलपन या चन्द्र-उन्मत्तता के रोगी से दूर हटते हैं, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य पागल कवि को छूने से डरते हैं और उससे बचते हैं : लड़के उसे धक्का देते हैं और बेवकूफ उसका पीछा करते हैं[२]।' होरेस के इस कथन का सारांश यही है कि कवि को बौद्धिक (Rational) होना चाहिए। वह एक प्रकार से प्लेटो के कविसंबंधी दैवी पागलपन के सिद्धान्त का निराकरण कर रहा है।

---

१. "Orpheus, seer and bard in one, weaned savage forest tribes from murder and foul living; whence the legend that he tamed tigers and fierce lions. It was said, too, that Amphion, founder of Thebes, moved stones by the sound of his lyre and drew them where he would by the magic of his entreaty. This was the poet's wisdom of old—to draw a line between the Man and the State, the sacred and the common; to build cities, to check promiscuous lust, to assign rights to the married, to engrave laws on wood. Thus did praise and honour come to divine poets and their lays...in verse were oracles delivered, and the path of life shown forth...and festivals were devised to sweeten human toil. This I say lest perchance, you should be ashamed of the lyric Muse, and of Apollo lord of song." (Ibid. p. 141.).

२. "As men shun the patient troubled with itch, jaundice, insanity, or moonstruck frenzy, so wise men dread to touch a mad poet, and avoid him; boys jostle him and fools pursue. (Ibid. p. 142.)

होरेस के 'काव्यकला'-पत्र का यह संक्षिप्त सारांश होरेस की मौलिक शैली का परिचय देने में असमर्थ है। फिर भी इसकी शैलीगत साहित्यिक सुस्पष्टता, प्रस्थापना का ढंग, विश्वासपूर्ण संस्कृत निश्चयात्मकता तथा निष्कर्ष पर पहुँचने का अपना ढंग—इन सबने इसे नियोक्लासिकों के बीच अमित प्रभाव से समन्वित कर दिया। सेन्ट्सबरी के शब्दों में 'तुम नियम चाहते थे, यहाँ तुम्हारे लिए नियम तैयार हैं, ऐसे रूप में कि स्मृति पर जोर न पड़े। रुचि को आकृष्ट करनेवाले, कोरे उपदेशक द्वारा नहीं प्रत्युत काव्य के एक से अधिक क्षेत्र के कुशल शिल्पी द्वारा, बिना किसी दुराग्रह, आरोप या क्षोभकारी प्रदर्शन के, सरल स्वीकार्य शैली में, जिनका विरोध ही अविनीत प्रतीत होगा[१]।' जैसे कौन इसे अस्वीकार करेगा कि 'असामंजस्यपूर्ण' (Inconsistent) वस्तुएँ एक में न जोड़ी जायँ, किसी भी गुण का अतिरेक खतरनाक है। सतत परिवर्तन की चेष्टाएँ क्षुब्ध करनेवाली होती हैं। तुम्हें विषय अपनी क्षमता के अनुरूप ही चुनना चाहिए। स्वीकृत पदविन्यास और छंद का पालन करो। क्षोभकारी वस्तु-विषय से बचो। शिक्षा या अनुरंजन या दोनों का प्रयास करो, आदि।

सेन्ट्सबरी इसके साथ ही इसके अवगुण भी बताता है। शैलीगत सुस्पष्टता की प्रशंसा करते हुए भी वह कहता है कि इसके सामान्य कथनों की युक्तियुक्तता यद्यपि प्रत्यक्ष है फिर भी अध्ययन और विचार के बाद उनमें एक प्रकार का हल्कापन दिखाई पड़ता है और होरेस की उत्कृष्ट अभिव्यंजना के परिधान के हटा देने पर वे तुच्छ और हीन प्रतीत होते हैं। पूरी कृति अत्यन्त

---

१. "You wanted 'rules', and you had them here, in a form giving no trouble to the memory and attractive to the taste, put forth, not by a mere preceptist but by a craftsman of unsurpassed competence in more than one branch of poetry itself, wish no insolent dictation, manner, on irritating pedantry, but in an easy take-for granted manner, which it might seem at once insolence...to resist." (A History of English Criticism: Saintsbury, p. 15)

अव्यवस्थित दिखाई पड़ती है, इसमें अरस्तू की तरह नाटक का कोई सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित किया गया और केवल वर्तमान नाटकों के आधार पर कुछ निष्कर्ष रखे गए हैं कि क्या उपयुक्त है और क्या अनुपयुक्त, जो कि आंशिक और क्रमरहित हैं। इसका सबसे बड़ा दोष इसके बहुत से और मुख्य सिद्धान्तों में लक्षित आधिकारिक प्रवृत्ति (Arbitrariness) है । उदाहरणतः यह क्यों नियत कर दिया जाय कि कुछ छंद कुछ विशिष्ट काव्य-प्रकार के साथ अविच्छिन्न रूप से संबद्ध हैं, पौराणिक पात्र उसी रूप में प्रस्तुत किए जायँ, अवस्था और वर्ग के साथ उनकी विशेषताएँ एकरस रूप में निश्चित कर दी जायँ और इस पर आग्रह किया जाय कि लड़के लड़के ही रहेंगे और बुड्ढे चिढ़नेवाले और लालची, नाटकों में क्यों पाँच ही अंक रखे जायँ। अनुभव यह बताता है कि यह आवश्यक नहीं कि रंगमंच पर हत्या सदा जुगुप्सा ही पैदा करे। और जो कुछ कहा जा सके उसे नजर के सामने से हटाने के बजाय यह कहीं अच्छा होगा कि कथन को यथासंभव कम कर नजर के सामने जो कुछ रख सको उसे प्रस्तुत करो।

सेंट्सबरी के शब्दों में 'संक्षेप में, सावधानी के साथ अध्ययन करने पर होरेस व्यवस्था, संयम तथा निश्चयात्मक नियम के 'क्लासिक' अपितु नियो-क्लासिक मतवाद (Creed) प्रदर्शित कर रहा है, जिसमें उसके रूप (Form) की शक्ति के साथ उसके तत्व (Substance) की शिथिलता भी पूरी-पूरी प्रकट हो रही है[१]।'

फिर भी इस छोटे से पत्र का योरुपीय आलोचना-क्षेत्र पर जैसा व्यापक प्रभाव पड़ा वह सर्वथा आश्चर्यकारी है । यह प्रभाव मध्ययुग और नियो-क्लासिकों तक बराबर बना रहा। एक विद्वान् के शब्दों में 'यह क्रमरहित तथा आंशिक लघु निबंध बाद के युगों में आधिकारिक शास्त्रग्रंथ (Treatise)

१. "In short, Horace shows, with every possible advantage of form but to considerable disadvantage of substance when carefully studied, the strictest classic, nay, neoclassic, creed of order, restraint, positive rule." (Ibid. p. 16)

के रूप में स्वीकृत हुआ और काव्यात्मक कला के एक रूप पर—जिसका कि उसे बहुत ही कम व्यावहारिक ज्ञान था—होरेस द्वारा अभिव्यक्त विचारों का साहित्य के पुनरुत्थान के समय और पिछली शताब्दी तक, नाटक के ढाँचे और विकास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। जिस प्रकार कि आधुनिक 'कमेडी' प्लाटस और टेरेंस के अनुकरण पर आधारित है और जिस प्रकार कि ट्रेजेडी के आरंभिक प्रयास सेनेका के पदों का रुक-रुककर अनुसरण करते रहे उसी तरह दोनों के सिद्धान्त के संबंध में यूनानियों का नहीं अपितु होरेस का प्रभाव निर्देशन करता रहा[१]।'

इसका एक और दृष्टि से भी महत्त्व है और आलोचना के विद्यार्थियों को इस पत्र को इस रूप में भी उसे देखना चाहिए। होरेस की 'काव्यकला' कवियों द्वारा अपनी कला के संबंध में उद्घोषित उद्गारों की लम्बी श्रृंखला में प्रथम है।

---

१. "This discursive and fragmentary essay," says Mr. J. W. Mackail, "was taken in later ages as an authoritative treatise; and the views expressed by Horace on a form of poetical art with which he had little practical acquaintance had, at the revival of literature, and even down to late century, an immense influence over the structure and development of the drama. Just as modern comedy based itself on imitation of Plautus and Terence, and as the earliest attempts at tragedy followed haltingly in the steps of Seneca, so as regards the theory of both. Horace, and not the Greeks, was the guiding influence." (Horace and His Poetry, p. 136)

लॉनजाइनस का 'प्येरी हुपसाउस'

(Peri Hupsous)

लॉनजाइनस उन लेखकों में है जिनके विषय में, उनकी कृति को छोड़-कर, अन्य कुछ भी ज्ञान नहीं है। उसके जीवन का अध्ययन संभव नहीं है। अतः हमें केवल उसकी कृति पर ही विचार केंद्रित करना पड़ता है। यह लेखक सामान्यतया लॉनजाइनस के नाम से विख्यात है और कृति का शीर्षक 'उदात्तता' (On the Sublime) है। परंपरा उसको पामीरा की रानी जिनोबिया (तीसरी शती) का सचिव समझती रही है (जिसे रानी को स्वतंत्रता के लिए उद्‌बुद्ध करने के अपराध में रोमन सम्राट् के द्वारा मृत्युदंड भोगना पड़ा), किन्तु अब इसे अमान्य ठहरा दिया गया है। इससे अधिक इस लेखक के विषय में ज्ञात नहीं है।

प्राचीन समीक्षकों में इसके सिद्धान्त इसे दूसरे से अपूर्व और अत्यन्त आधुनिक बना देते हैं। फलतः 'नियोक्लासिक' और 'पूर्व-रोमांटिक' दोनों के समर्थकों को इससे प्रेरणा मिली, फिर भी सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक (१५५४ ई०) यह कृति अज्ञात ही रही। इसका पहला अंग्रेजी अनुवाद सन् १६५२ में हुआ, बोलो (Boileu) के फ्रेंच अनुवाद (१६७४) से इसकी लोकप्रियता बढ़ी और तब से एक दर्जन आधुनिक भाषाओं में इसका रूपान्तर हो चुका है। ड्राइडन का कहना है कि (यूनानियों में) अरिस्टाटिल के पश्चात् लॉनजाइनस सबसे बड़ा आलोचक है। अठारहवीं शताब्दी में यह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और इस कृति के आधार पर बर्क जैसे विद्वानों के द्वारा पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ। रोमांटिकों को भी इससे प्रेरणा मिली और लोगों को उनके सिद्धान्तों के बीज इसमें दिखाई पड़े।

इस कृति के शीर्षक का अंग्रेजी में कई प्रकार से रूपान्तर हुआ। प्रथम अनुवादक हाल इसे भाषण की उच्चता (The Height of Eloquence)

कहता है। पल्टे ने इसे 'उच्चता या भाषण की भव्यता' (The Loftiness of Elegancy of Speech) शीर्षक दिया। बाद के अधिकांश संस्करणों का शीर्षक 'भव्यता पर' (On the Sublime) है। भव्यता या उदात्त (Sublime) शब्द ही अठारहवीं शताब्दी में सर्वाधिक प्रचलित रहा। प्रोफेसर टकर ने अपने अनुवाद को 'शैली की उत्कृष्टता पर' (On the Elevation of Style) शीर्षक दिया और अपनी भूमिका में उदात्तता (Sublimity) के लिए 'अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता' (Excellence of Expression) के प्रयोग का सुझाव दिया।

लॉनजाइनस की मुख्य देन काव्य (या काव्यत्व) के मूलभूत तत्त्व की खोज, उसके स्वरूप का विवेचन, उसके स्रोत का संकेत तथा उसके प्रभाव का द्योतन है। यह तत्त्व 'भव्यता' (या उदात्तता) (Sublimity) का सिद्धान्त है। काव्य में सबसे मुख्य यही 'भव्यता' (या उदात्तता) है। पाँच स्रोत इसकी उपलब्धि में सहायक हैं जिनमें दो प्रकृति के अधीन हैं और शेष तीन 'कला' (या प्रक्रिया) द्वारा साध्य हैं। इसी प्रकार कतिपय दोष हैं जो 'भव्यता' के शत्रु और विनाशक हैं, 'भव्यता' की पहचान उसके प्रभाव में है, जो पाठक या श्रोता को 'भावावेश' (Ecstasy) की स्थिति में पहुँचा देता है। संक्षेप में 'भव्यता' (Sublime) और 'भावावेश' (Ecstasy) के सिद्धान्त लॉनजाइनस की मौलिक तथा गंभीर दृष्टि के परिचायक हैं। बाद की शताब्दियों में इन्हीं को आधार बनाकर समालोचकों ने अपने अपने मत की प्रतिष्ठा की और इनकी विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

लॉनजाइनस के मतानुसार 'भव्यता' आवेश या अतिरेक में स्थित रहती है[१]। भव्यता वह स्वर है जो महान् मस्तिष्क से ध्वनित होता है[२]। भाषागत उच्चता और उत्कृष्टता सदा भव्यता है और केवल इसी से ही गद्य के महान् लेखकों ने प्रथम स्थान प्राप्त किया और अपनी ख्याति को अमरता का परिधान दिया; क्योंकि असाधारण प्रतिभावान् (Genius) की वाक्यावली या पद-समूह

---

१. "Sublimity lies in intensity."

२. "Sublimity is the note that rings from a great mind."

(Passages) श्रोता को संबोधन (Persuasion) की ओर न ले जाकर भावावेश (Ecstasy) की स्थिति में पहुँचा देते हैं[१]।

'भावावेश' (Ecstasy) इसी 'भव्यता' का परिणाम और लक्ष्य दोनों है। भावावेश की स्थिति 'भव्यता' के प्रभाव को द्योतित करती है और सच्ची 'भव्यता' की पहचान भी बन जाती है। भावावेश की स्थिति 'संबोधन' (Persuasion) की स्थिति से ऊपर उठी हुई और उससे भिन्न है। भव्यता के कारण उस स्थिति में आत्मा आह्लाद से भर जाती है और अपूर्व ढंग से कवि (या काव्य) की भावना उसकी अपनी हो जाती है और इस प्रकार दोनों में एक प्रकार का तादात्म्य स्थापित हो जाता है। भावावेश की इस स्थिति में सच्ची भव्यता का जो प्रभाव पड़ता है वह सतत और सबको आनंददायी होता है और उसकी छाप अमिट होती है।

"यह प्रकृति का सत्य है कि सच्ची 'भव्यता' के द्वारा आत्मा ऊँची उठ जाती है। यह गर्वपूर्ण ऊँचा पद प्राप्त करती है। यह आनंद और आह्लाद से भर जाती है, जैसे कि मानो जिसको वह सुन रही है उसका उसी ने ही सर्जन किया हो। सचमुच में महान् (काव्यवस्तु) वही है जो नई विचारणा के लिए सामग्री देता हो, जिसका विरोध कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव हो, जिसकी

---

१. "Sublimity is always an eminence and excellence in language and that from this and this alone, the greatest writers of prose have attained the first place and have clothed their fame with immortality. For it is not to persuasion but to ecstasy that passages of extraordinary genius carry the hearers.

On this sentence rests Longinus' claim to modernity. By persuasion he means the less valuable plane of rhetoric, which sets out to persuade and please. But the response to the 'Sublime' is ecstasy, which involves a state of mind in which purely intellectual communication (persuasion) and purely sensuous apprehension (pleasure) are transcended in a condition to which moral or intellectual standards no longer apply." (Longinus and English Criticism, p. 12)

समृद्धि दृढ़ एवं अमिट हो। यह समझ लो कि जो सतत आनंदित करे और सबको आनंदित करे वह भव्यता का सुन्दर और सच्चा प्रभाव है[१]।"

लॉनजाइनस के इस उद्‌गार में विद्वानों को कई महत्त्वपूर्ण विचारों के बीज दिखाई पड़े। उनके विचारानुसार 'यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह भव्यता और भाव के संबंध पर विशेष जोर देता है। यह भाषण-कला से ऊपर उठकर भव्य वस्तुओं के मस्तिष्क पर पड़नेवाले प्रभाव के उस विश्लेषण को शुरू करता है जो आगे चलकर भव्यता की लालित्यमूलक (Aesthetic) भावना की ओर ले जानेवाला है।[२]'

'कला में भाव की उपस्थिति, अठारहवीं शती की भव्यता का प्रस्थान-बिंदु है और भावोद्दीपक के रूप में कला का अध्ययन, नियमों के अध्ययन की अपेक्षा उस युग के काव्यात्मक विचार की अधिक अनुरूप विशेषता है[३]।'

---

१. "For it is a fact of nature that the soul is raised by true sublimity, it gains proud step upwards; it is filled with joy and exultation as though itself had produced what it hears... That is really great which gives much food for fresh reflections, which it is hard, nay, impossible to resist; of which the memory is strong and indelible. You may take it those are beautiful and genuine effects of sublimity which please always and please all." (Ibid. p. 12)

२. "This idea is important because it emphasizes the relation between the sublime and the emotion; it transcends the realm of rhetoric and begins that analysis of the effect of sublime objects on the mind which is to lead later to an aesthetic concept of sublimity." (The Sublime by Samuel H. Monk p. 13)

३. "The presence of emotion in art is the point of departure for the Eighteenth century sublime, and the study of art as the looker of emotion is perhaps even more characteristic of the aesthetic thought of the period than the study of the rules." (Ibid. p. 14)

लॉनजाइनस का कथन है कि (भावावेश की दशा में) ऐसा प्रबंध हमें शान्त करता है और हमें उदात्तता, उच्च भाव तथा भव्यता की ओर उन्मुख कर हमारे मानस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है। निम्नलिखित उद्धरण में भावावेश (Ecstasy) की दशा का वर्णन है—

'ऐसी कृति को इन सभी साधनों के द्वारा हमारे सुनने के साथ हमारा शमन करना चाहिए और हमें उदात्तता, उच्च भाव और भव्यता तथा उन सबकी ओर—जो कि उसमें हैं—प्रत्येक दिशा में, मस्तिष्क के ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त करते हुए, उन्मुख करना चाहिए[१]।'

आलोचकों को लॉनजाइनस के इस शमन-कथन में अरस्तू के रेचन-सिद्धान्त (Catharsis) की गूँज मिलती है, यद्यपि वे यह भी कहते नहीं थकते कि लॉनजाइनस की 'भव्यता' का लक्ष्य इससे उच्चतर है और वह लक्ष्य है आह्लाद या 'भावावेश' की स्थिति।

'भव्यता' तथा भावावेश की चर्चा करने के साथ ही लॉनजाइनस एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाता है कि 'क्या भव्यता की या इसके वैपरीत्य की कोई कला है?' 'कला' शब्द का प्रयोग उस पद्धति या प्रक्रिया के लिए हुआ है जिसका कि वस्तुगत (Objective) अध्ययन कर नियमों का निर्धारण किया जा सके और जिसके कौशल की शिक्षा दी जा सके। यूनानी दुनिया में इसका प्रयोग पच्चीकारी से लेकर संगीत और आयुर्वेद तक के लिए हुआ है। लॉनजाइनस ने इस प्रश्न को कैसीलियस का विरोध करते हुए इसलिए उठाया है कि कुछ लोगों का विचार है कि प्रतिभावान् (Genius) जन्मजात महान् होता है और उसकी महत्ता के लिए जन्म लेने के अतिरिक्त अन्य किसी साधना की आवश्यकता नहीं है तथा नियम आदि उसके प्राकृतिक गुणों को धूमिल कर देते हैं। लॉनजाइनस के मतानुसार प्रकृति, जो भव्य तथा महान् है,

---

१. "That composition must by all these means at once sootheus as we hear and also to dispose to stateliness and high mood and sublimity, and every thing which it contains with itself in each and every direction gaining the mastery over minds." (Ibid. p. 71)

स्वयं सब वस्तुओं में नियम का विकास करती है। 'महत्ता को अपने से ही संकट है यदि वह नियमन या संयमन (कला) के बिना यों ही छोड़ दी जाय। महत्ता को जिस प्रकार प्रायः ऐंड़ की आवश्यकता होती है उसी प्रकार लगाम की भी[१]।' उसका कहना है कि 'डिमास्थनीज़ के इस कथन को कि सभी अच्छी वस्तुओं में सौभाग्य सबसे बड़ी चीज है और दूसरी चीज सत्परामर्श है, जो पहली से किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है और जहाँ दूसरी नहीं होती पहली तत्क्षण लुप्त हो जाती है—साहित्य पर अच्छी तरह घटित किया जा सकता है। इसमें (साहित्य में) प्रकृति सौभाग्य का स्थान लेती है और कला सत्परामर्श का[२]।'

लॉनजाइनस इस कथन के द्वारा यह घोषित करता है कि शैली या काव्य-कृति में स्वाभाविक गुण और ज्ञात साधना दोनों का योग रहता है[३]। वह एक प्रकार से प्लेटो और अरस्तू दोनों से अलग जा रहा है। इसमें प्लेटो के काव्य-संबंधी 'दैवी प्रेरणा या दैवी पागलपन' का एक प्रकार से निराकरण है, और अरस्तू के ट्रेजेडी के विश्लेषण में दिए हुए दो तत्त्वों—विचार (Thought)

---

१. "The spur, it appears, is not to be a factitious excitement, it must arise from the artist's genuine impulse to create. The list is the restraint which is necessary if faults are to be avoided, and if the resource of the technique are to be used in full." (Longinus and English Criticism.)

२. "What Demosthenes shown to be true of the common life of men—that of all good things the greatest is good fortune, but a second, not inferior to the first, is good counsel, and that where the latter is wanting the former is atonce cancelled—we may properly apply to literature; here Nature fills the place of good fortune, Art of good counsel." (Ibid. p. 4)

३. "This statement embodies two distinct doctrines; the first, that the native born qualities of the artist are of primary importance and that technique cannot cloak a deficiency in this respect, the second, that technical knowledge is essential for full appreciation." (Ibid. p. 25)

और पदविन्यास (Diction)—के प्रति अरस्तू की अपेक्षा अधिक वस्तुगत (Objective) व्यावहारिक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टि है। प्रकृति तथा नियम पर जो आग्रह यहाँ पर दिखाया गया उससे 'नियोक्लासिकल' शास्त्र-वादियों को बड़ा बल मिला और उन्होंने नियमों (अनुपात, समस्थिति=Balance) आदि को सर्वोपरि और अनुल्लंघनीय घोषित करते हुए उसके पक्ष में पद-पद पर लॉनजाइनस की उद्धरणी दी।

लॉनजाइनस पहले उन दोषों की चर्चा करता है जो 'भव्यता' (Sublime) के शत्रु या विनाशक हैं। इन दोषों में अतिशयोक्ति (Turgidity) का निवारण अत्यन्त कठिन है[१]। शरीर की तरह लेखन में भी सभी प्रकार का शोथ (या सूजन), जो कि खोखला और अवास्तविक है, खराब है[२]। इस प्रकार जब कि अतिशयोक्ति (Turgidity) की प्रवृत्ति भव्यता से परे और आगे बढ़ जाना है, क्षुद्रता (puerility) उस सबके सर्वथा विपरीत है जो कि महान् है। लेखक इसमें उस समय पड़ जाते हैं जब वे उस ओर उन्मुख होते हैं जो कि असामान्य अस्वाभाविक और सबसे अधिक प्रिय होती है और इस प्रकार बुद्धिहीनता और बनावट की चट्टान से टकरा जाते हैं[३]। तीसरे प्रकार का दोष उस भावुकता से भरे पद-समूह में पाया जाता है जिसे कि अनन्विति (Parenthynsus) कहते हैं। यह 'भावावेग का स्थान-विपरीत और अर्थरहित होना है अर्थात् भावावेग का उस स्थल पर होना जहाँ उसकी आवश्यकता नहीं और असंयमित होना जहाँ कि संयम की आवश्यकता है[४]।' लोग इसमें उन भावनाओं की

---

१. "Turgidity is of all faults perhaps the most difficult to avoid." (Ibid. p. 6).

२. "As in bodies, so in writings, all swellings which are hollow and unreal are bad." (Ibid. p. 7)

३. "Authors glide into this when they make for what is unusual, artificial, above all agreeable, and on run as the reefs of nonsense and affections." (p. 7)

४. "This is passion out of place and unmeaning, where there is no call for passion, or unrestrained where restraint is needed." (Ibid. p. 7)

अभिव्यक्ति में लग जाते हैं जिनका कि वस्तुविषय से कोई संबंध नहीं और जो सर्वथा वैयक्तिक हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दर्शक अप्रभावित रहते हैं और वक्ता तो भावावेश में होते हैं, किन्तु श्रोता इससे सर्वथा शून्य रहते हैं[१]।

लॉनजाइनस के विचार से इन दोषों का स्रोत तत्कालीन नवीनता की सनक या झक है और सच्ची भव्यता के स्पष्ट तथा विवेक (पूर्ण ज्ञान) का अभाव है। वह स्पष्ट कहता है कि 'साहित्य में ये समस्त दोष एक ही कारण से उद्‌भूत होते हैं—मानसिक नवीनता की उत्कट इच्छा—जिसके ऊपर हमारी पीढ़ी सबसे अधिक पागल हुई जा रही है[२]।'

इन दोषों के संबंध में सावधान करते हुए लॉनजाइनस यह कहता है कि दोष और गुण का स्रोत एक ही है। जो गुण हैं वे ही दोष बन जाते हैं, यदि उनके प्रयोग में विवेक से काम न लिया गया, अभिव्यंजन का सौंदर्य, भव्य आदि जिस प्रकार हमारी कृति की सफलता में योग देते हैं उसी प्रकार उसके विपरीत भी हो जाते हैं। यही बात अतिशयोक्ति तथा अन्य लेखन-युक्तियों पर भी लागू होती है। शपथ के संबंध में लॉनजाइनस ने एक स्थल पर लिखा है कि 'नाम की शपथ लेना महत्त्वपूर्ण नहीं है। स्थान, विधि, अवसर, उद्देश्य सभी आवश्यक हैं।' इन दोषपूर्ण प्रयोगों के विषय में भी यही बात समझनी चाहिए। इनके प्रयोग में विवेकपूर्ण निर्णय अत्यावश्यक है, यद्यपि इसकी प्राप्ति कठिन है। लॉनजाइनस के शब्दों में 'शैली का विवेकपूर्ण निर्णय अत्यधिक अनुभवों का अन्तिम तथा पूर्णतया परिपक्व फल है।' फिर भी इस संबंध में सम्यक् निर्णय असंभव नहीं है।

लॉनजाइनस के मतानुसार उच्च (या उदात्त=Lofty) शैली के पाँच स्रोत हैं। अभिव्यंजन-शक्ति को तो इन पाँचों की सामान्य नींव मानकर ही

---

१. "The speakers are in ecstasy and the hearers are not." (Ibid. p. 7)

२. "All these undignified faults spring up in literature from a single cause, the craving for intellectual novelities, on which above all else, our own generation goes wild." (Ibid. p. 10)

चलना पड़ेगा और उसे (अभिव्यंजन-शक्ति को) इनसे अपृथक् मानना होगा। इनमें प्रथम और सबसे अधिक शक्तिशाली महान् विचारणाओं (Great Conceptions) की संग्रहण-शक्ति या महान् भावनाओं या धारणाओं की अपार क्षमता है। उत्तप्त, शक्तिशाली भावावेग का स्थान द्वितीय है। भव्यता के ये तत्त्व सहजात या प्रकृतिदत्त हैं। महान् विचार पर आग्रह ने लॉनजाइनस और उनके अनुयायियों को उस मस्तिष्क के संबंध में विचार करने को प्रेरित किया जो कलाकृति का सर्जन करता है। भावावेश पर आग्रह अंग्रेज आलोचकों के हाथ में कलाकृति के ग्रहणशील मानस पर पड़नेवाले प्रभाव के अध्ययन में विकसित हुआ[१]। शेष (तीन) कला द्वारा संप्राप्त हैं। काव्य-युक्तियों (Figures) का समुचित प्रयोग इनमें आता है। विचार की युक्तियाँ (Figures of Thought) और पदविन्यास की युक्तियाँ (Figures of Diction) इसके अंतर्गत हैं। इसके बाद उदात्त शब्द-योजना (Noble Phraseology) है जिसके उपविभाग शब्द-चयन (Choice of Words), असामान्य कथन (Tropes) और व्यास-पद्धति (Elaboration) हैं। पाँचवाँ आवेशपूर्ण और शालीन प्रबंध (Dignified Composition) है। शेष तीन स्रोत गौण हैं यद्यपि भव्य शैली की परंपरा कई शताब्दियों तक जीवित रही। किन्तु भव्य को कला की आत्मा या विशेषता के रूप में एक बार पृथक् कर लिए जाने पर (जिसका कि स्रोत कलाकार के मानस में है और जो पाठक या दर्शक के मानस में भावों को उद्दीप्त करता है) विशेष आग्रह स्वाभाविक रूप से प्रथम दो स्रोतों पर रहा जो कलात्मक कौशल से स्वतन्त्र और परे माने गए[२]।

---

१. "The emphasis on great thought led Longinus and his followers into the consideration of a mind that creates a work of art; the emphasis on emotion, in the hands of English critics, developed into a study of the effect of a work on the perceiving mind." (The Sublime by Samuel H. Monk, p. 14)

२. "But once the sublime was isolated as a quality of art, having its source in the mind of the artist and arousing

'भव्यता' के इन स्रोतों को बताते हुए लॉनजाइनस हमें सावधान करता है कि 'भव्यता' और भावुकता को एक समझना, उनको सहस्थित, या उनका सामान्य स्रोत मानना भूल होगी, क्योंकि कुछ भाव 'भव्यता' से बिलकुल अलग और क्षुद्र हैं जैसे करुणा, दुःख और भय के भाव। इसी तरह बिना भाव के भी भव्यता हो सकती है। साथ ही 'समुचित भावावेग के समान उच्चता या उदात्तता प्रदान करनेवाला कोई अन्य नहीं है। यह जोश और दैवी आवेश (Divine Possession) की साँस फूंक देता है और शब्दों को स्फुरण देता है[१]।

लॉनजाइनस ने इसी सिलसिले में 'कल्पना' की चर्चा भी की है। 'कल्पना के द्वारा गुरुत्व, भव्यता और वाक्शक्ति का और भी अधिक विकास होता है[२]।' कल्पना की परिभाषा देते हुए वह कहता है कि यह शब्द वहाँ पर लागू होता है 'जब कि भावावेग और उत्साह से प्रेरित होकर तुम जैसे उन चीजों को देखने लगते हो जिनके विषय में तुम कह रहे हो और तुम उन (चीजों) को अपने श्रोताओं की दृष्टि के संमुख प्रस्तुत कर देते हो[३]।' वह यह भी कहता है कि 'भाषण में कल्पना का आशय एक है और कवियों के साथ दूसरा।....

---

an intense emotion in the mind of the reader or spectator, emphasis naturally tended to center on the first two sources, which were considered to be independent of and even to transcend artistic skill." (Ibid. p. 14)

१. "Nothing reaches great eloquence so surely as genuine passion in the right place, it breathes the vehemence of frenzy and divine possession and makes the very words inspired." (Ibid. p. 14)

२. "Weight, grandeur, and energy of speaking are further produced in a high degree,...by appeals to Imagination. (Ibid. p. 32)

३. "Where moved by enthusiasm and passion, you seem to see things of which you speak and place them under the eyes of your hearers." (Ibid. p. 33)

कवियों का उद्देश्य आश्चर्यान्वित या चकित कर देना है और भाषण का स्पष्टता देना। फिर भी दोनों मानस का दृढ़ता से मंथन करना चाहते हैं[१]।' इसी प्रसंग में वह यह भी कहता है कि कवियों की कल्पना पर कोई बंधन नहीं है। भाषण-कला और काव्य में कल्पना के विभिन्न प्रयोग या उपयोग की चर्चा करते हुए वह इसे स्पष्ट करता हुआ कहता है कि 'कवियों में पाई जानेवाली कल्पना अतिरेक से पौराणिकता में बदल जाती है और विश्वसनीयता के परे चली जाती है। भाषण की कल्पना में वह सदा सर्वोत्तम है जिसमें यथार्थता और सत्यता है[२]।'

लॉनजाइनस का कहना है कि भव्यता की ओर ले जानेवाला एक मार्ग और है और वह है पूर्ववर्ती महान् कवियों और लेखकों का अनुकरण। जिस प्रकार कि पीथियन भविष्यवक्ता त्रिशूल के पास आकर दैवी शक्ति से भरकर स्फुरित मंत्र गाती है उसी प्रकार प्राचीन महान् प्रतिभाओं से एक धारा अनुकरणकर्ताओं के हृदय में प्रवेश कर जाती है, जिससे स्फुरण प्राप्त कर लोग उस महत्ता को प्राप्त कर लेते हैं जो दूसरों में थी। लॉनजाइनस के इस संक्षिप्त कथन में प्लेटो के स्फुरण (Inspiration) संबंधी 'मुद्रिका-सिद्धांत' (Ring Theory) और यूनानी आलोचनात्मक संसार में अत्यंत प्रचलित 'अनुकरण' के सिद्धान्त की बहुत हल्की गूँज है। वह अतीत के साथ भविष्य का संकेत भी करता है जब वह लेखकों को अपने सामने रखे गए प्रश्न को सतत रखने को कहता है कि 'यदि मैं ऐसा लिखूँ तो भविष्य की पीढ़ियाँ मुझे किस भावना से सुनेंगी[३]।' एक आधुनिक आलोचक के मतानुसार अनुकरण से

---

१. "Imagination means one thing in rhetoric, another with poets,...the object of the latter is to arrange of the former to give distinctness; both, however, seek to stir the mind strongly." (Ibid.)

२. "...that those found in poets admit an excess which passes into the mythical and goes beyond all that is credible; in rhetorical imagination that which has in it reality and truth is always best." (Ibid. p. 35)

३. "If I write this in what spirit the future ages will hear me." (Longinus and English Criticism, p. 9).

आशय शैली की अनुकृति न होकर उत्कृष्टता का अनुकरण है। प्राचीनों का अनुकरण उस साहित्यिक परंपरा का प्रतीक या संकेत है जो अंधपुनरावृत्ति का आदेश नहीं देता प्रत्युत उसको आत्मसात् (Emulate) करने को कहता है जो स्पृहणीय है और जो विवेक से प्राप्त होता है।[१]

इसके बाद लॉनजाइनस उन युक्तियों (तथा अन्य साधनों) (Figures) का वर्णन करता है और उनके उदाहरण प्रस्तुत करता है जो कि शैली को उदात्तता और उच्चता प्रदान करती हैं। इन युक्तियों में कतिपय मुख्य ये हैं— प्रश्नोत्तर, संयोजक शब्दों का त्याग (Asyndeta), शब्द-समूह के समुचित क्रम में अव्यवस्था (Hyperbaton), कारक (Case), काल (Tense), पुरुष, संख्या, लिंग का परिवर्तन (Polyplota), भूतकाल के लिए वर्तमान का प्रयोग, घुमा-फिराकर बात कहना (Periphrasis), समुचित और भव्य शब्दों का चुनाव (अलंकृत भाषा की अपेक्षा, ग्राम्य शब्द और मुहाविरे कभी-कभी अत्यधिक अभिव्यक्तिपूर्ण होते हैं, इसलिए उनका त्याग आवश्यक नहीं है) और अतिशयोक्ति (Hyperbole)। इन युक्तियों की चर्चा करते हुए लॉनजाइनस काव्य के मुख्य लक्ष्य भव्यता को कभी नहीं भूलता और यह कहते नहीं थकता कि इनकी सार्थकता और सफलता उपयुक्तता, औचित्य तथा अनुपात को सदा ध्यान में रखने में है और इनको भव्यता (और कभी भावुकता) के साथ संबद्ध करने में है। भव्यता के बिना इनमें अपने-आप खड़े होने की शक्ति नहीं है। "भव्यता के अभाव में ये आत्माविहीन शरीर के समान हो जाते हैं[२]।" इसका तात्पर्य यह हुआ कि वस्तुविषय और शैली, या कलागत 'आत्मा और शरीर' के भेद को न भूलना चाहिए और उनके बीच जो विभाजक रेखा है उसका ध्यान रखना चाहिए।

---

१. "...It is here that we arrive at the idea of a literary tradition which does not enjoin the slavery of repetition but of the emulation which comes of insight."

(Lectures in Criticism, p. 53)

२. "...take away the sublime and you will take soul out of body." (Ibid. p. 27)

लॉनजाइनस इन युक्तियों को साधन रूप में स्वीकार करता है। उसका कहना है कि इन युक्तियों के संकुल (Promiscuous) प्रयोग से लोगों के मन में एक प्रकार का विरोध पैदा हो जाता है। उन्हें इसमें दुराव, षड्यंत्र या प्रवंचना और बनावट का संदेह होने लगता है और उन्हें ऐसा लगता है कि इनके द्वारा उनको बच्चों की तरह बहलाने या ठगने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसीलिए उसका कहना है कि "वही युक्ति सबसे अच्छी है जिसके युक्ति होने का ध्यान ही लोगों को न हो[१]।" और इसी से वह इन युक्तियों को भव्यता और भावावेग के आवरण में छिपाने की सलाह देता है। 'ये युक्तियाँ स्वभावतया अपने को भव्यता से संबद्ध कर लेती हैं और यह संबंध उन्हें आश्चर्यजनक रीति से समर्थित करता है।[२]' इसलिए भव्यता और भावावेग, युक्तियों से संबंधित संदेह को दूर करने में बड़ी सहायता देते हैं और अद्भुत शक्ति के स्रोत हैं; क्योंकि प्रवंचक कला एक बार सुंदर और महान् से संबद्ध होकर बिना किसी प्रकार का संदेह उपजाए प्रवेश कर जाती है और आवास बना लेती है[३]। अतएव इन युक्तियों की सार्थकता तभी है जब ये 'भव्यता' की सिद्धि में सहायक हों। 'प्रवंचक' युक्तियों को छिपाने के लिए जो कुछ कहा गया है और कला के साथ जो (प्रवंचक) विशेषण जोड़ा गया है वह काव्य के संबंध में प्रचलित अत्यंत प्राचीन 'भ्रांति के सिद्धान्त' (Illusion Theory) की याद दिलाता है। नाटकों के संबंध में तो भ्रांति का सिद्धान्त बहुत समय तक प्रचलित रहा।

---

१. "Accordingly a figure is best, when the very fact that it is a figure passes unnoticed." (Ibid. p. 41)

२. "As though by nature, the figures ally themselves with sublimity and in turn are marvellously supported by the alliance." (Ibid. p. 40)

३. "Therefore sublimity and passion are a help against the suspicion attaching to the use of figures, and a resource of marvellous power; because the treacherous art, being once associated with what is beautiful and great, enters and remains, without exciting the least suspicion." (Ibid. p. 41)

काव्य-युक्तियों के साथ लॉनजाइनस शब्द-योजना और प्रबन्धात्मकता पर भी विचार करता है। शब्द-चयन के संबंध में उसका कहना है कि 'उपयुक्त शब्दों' का चुनाव और 'भव्य शब्दों' का चुनाव श्रोताओं को आश्चर्यजनक रीति से आकृष्ट करता है और मुग्ध कर लेता है। वक्ता और लेखक इसके अभ्यास का ध्यान रखते हैं और अपने स्वाभाविक गुण के कारण यह (शब्द-चयन) महत्ता, सौंदर्य, प्रवाह, गुरुत्व, शक्ति और अधिकार लाता है और अपनी निजी प्रसन्नता देता है। उसके कथनानुसार 'संदर शब्द सच्चे और विशिष्ट अर्थ में विचार की ज्योति हैं[१]।

भव्य शब्दों की अतुल शक्ति का वर्णन करते हुए और इस प्रकार उनके प्रयोग की सिफारिश करते हुए भी लॉनजाइनस अनुपात और संतुलन को नहीं भूलता। वह सावधान करते हुए कहता है कि इनकी भव्यता सभी स्थानों पर काम की नहीं है। 'छोटे-छोटे ब्योरों के लिए भव्य और गंभीर शब्दों का प्रयोग उसी प्रकार का लगेगा जिस प्रकार कि छोटे बच्चे के ऊपर करुण नाटक का बड़ा सा चेहरा[२]।'

शब्द-चयन के संबंध में उसका एक अन्य कथन महत्त्वपूर्ण है और ध्यान देने योग्य है। भव्य शब्दों की प्रशंसा करते हुए भी वह ग्राम्य शब्दों और मुहाविरों की अभिव्यंजन-शक्ति से अच्छी तरह परिचित है और उनके प्रयोग की संमति देता है। उसका कथन है कि 'ग्राम्य मुहाविरा कभी-कभी अलंकृत भाषा की अपेक्षा अधिक अभिव्यक्तिपूर्ण होता है[३]।' उस युग को देखते हुए लॉन-जाइनस का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

शब्द-चयन के साथ वह प्रबन्धात्मकता (Composition) की ओर भी

---

१. "For beautiful words are, in a real and special sense, the light of the thought." (Ibid. p. 55)

२. "To apply to trifling details grand and solemn words would appear much the same as if one were to fasten a large tragic mask upon a little child." (Ibid p. 55)

३. "So vulgar idiom is sometimes much more expressive than ornamental language." (Ibid. p. 56)

हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। उसकी दृष्टि में प्रबंध में विभिन्न अवयवों का परस्पर ग्रथित और गुम्फित होकर एक बन जाना बहुत आवश्यक है। यह एकान्वय (या एकान्विति) अनुपात, विस्तार तथा चयन आदि को ध्यान में रखने से ही संभव है। 'इन विभिन्न तत्त्वों में से सबसे महत्त्वपूर्ण का चुनाव और उनको परस्पर ग्रथन द्वारा एकस्वरूपता देना भव्यता (Sublime) का एक कारण है[१]।' लॉनजाइनस के मतानुसार भाषा उसी प्रकार भव्य बन जाती है जिस प्रकार कि शरीर के अवयवों का पारस्परिक संग्रथन। उनमें से यदि कोई एक अवयव दूसरे से काटकर अलग कर दिया जाय तो उसमें कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ती, किंतु सब मिलकर पूर्णता से युक्त ढाँचे (Structure) या रूप को जन्म देते हैं। इसलिए महत्त्वपूर्ण वाक्य-समूह (Passages) जब पृथक् हो जाते हैं और विभिन्न भागों में बिखर जाते हैं तो भव्यता को भी बिखेर देते हैं[२]।"

इस रूपान्विति और एकान्विति की प्रभावात्मकता में लय का भी प्रधान योग रहता है। लय की महत्ता और उसके प्रभाव से लॉनजाइनस अपरिचित नहीं है। लय के बंधन की सीमा वाक्य-समूह को नए स्वर दे देती है। 'लय एक साधन मात्र नहीं है जो कि मनुष्य के लिए स्वाभाविक है जो संबोधन और आनन्द को जन्म देती है; यह वह आश्चर्यजनक साधन है जो कि भावावेग को जन्म देती है और फिर भी उसे मुक्त रखती है[३]।' लयपूर्ण प्रबंध इस प्रकार

१. "One factor of sublimity must necessarily be the power of choosing the most vital of the included elements, and of making these, by mutual superposition, form as if were a single body." (Ibid. p. 22)

२. "Language is made grand in the highest degree by that which corresponds to the collocation of limbs in the body, of which no one, if cut off from another has, anything noticeable in itself, yet all in combination produce a perfect structure. So great passages when separated and scattered in different parts, scatter also the sublimity." (Ibid. p. 73).

३. "...that melody is not only an instrument natural to man, which produces persuasion and pleasure; it is a marve-

अपरिमित शक्ति प्राप्त कर लेता है और उसकी[१] प्रेषणीयता की शक्ति बढ़ जाती है। ऐसा प्रबंध वक्ता के भावों को दर्शकों की आत्मा में पहुँचा देता है और उनको (दर्शकों को) उसका (वक्ता का) सहयोगी बना देता है। लॉन-जाइनस के शब्दों में 'और फिर क्या हम यह न सोचें कि प्रबंध इस तरह शब्दों की विशिष्ट लय है, (ऐसे) शब्द जो कि मनुष्य में प्रकृति द्वारा हैं और जो केवल उसके कान तक न सीमित रहकर उसकी आत्मा में ही पहुँच जाते हैं, ...जो (प्रबंध) कि ध्वनियों के संमिलन और अनेकात्मकता के कारण वक्ता में स्थित भावावेग को दर्शकों की आत्मा में पहुँचा देता है और उनको उसका सहयोगी बना देता है।' मुहाविरा ब मुहाविरा इस प्रकार महत्ता से भरे संपूर्ण वाक्य (या पद) समूहों को निर्मित करता है[२]।

काव्य-युक्तियों, शब्द-योजना तथा प्रबंधात्मकता आदि की चर्चा के साथ ही वह संपूर्ण कृति के संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाता है। 'क्या काव्य या गद्य-लेख आदि में त्रुटियुक्त महत्ता स्पृहणीय है या ऐसी प्रतिभा जिसकी सफलता सीमित और संकुचित है किन्तु जो गलती नहीं करती? क्या प्रथम पुरस्कार उसे मिले जिसमें अनेक खूबियाँ हों या जिसमें सबसे महान् और बड़ी

llous instrument, which produces passion, yet leaves him free." (Ibid. p. 73)

१. "This seems to imply that the emotion resulting from listening music is comparable to that resulting from actual physical experience, but without the accompanying disadvantages, he is free." (Longinus and English Criticism, p. 68)

२. "And then are we not to think that composition—being as it is, a special melody of words, words which are in man by nature and which reach his very soul, and not his ears alone; ··Carrying moreover by the very commixture and multiplicity of its own sounds, the passion which is present to the speaker into the souls of the bystanders, and bringing them into partnership with himself; building phrase as phrase and so shaping whole passages of greatness..." (Ibid, p. 71)

विशेषता हो ? भव्य किंतु त्रुटियुक्त कृति और त्रुटिहीन (नियमानुरूप या नियमानुकूल) किंतु भव्यता से हीन कृति के बीच लॉनजाइनस भव्य (यद्यपि त्रुटियुक्त) कृति को ही पसंद करता है। उसका कहना है कि महान् प्रतिभाएँ पूर्ण नहीं होतीं, हर ब्योरे की पूर्णता लघुता के निकट आ जाती है। साधारण प्रतिभा चूँकि कोई जोखिम नहीं उठाती इसलिए उसकी असफलता भी नहीं होती, किंतु जो महान् है उसमें महत्ता के कारण जोखिम भी अधिक है। इसलिए उसका कहना है कि 'मेरा यह दृढ़ विचार है कि प्रत्येक दशा में महान् उत्कृष्टता, यद्यपि वह सदा एक स्तर पर नहीं रखी जा पाती, प्रथम पुरस्कार ले जाए। यदि और किसी चीज के लिए नहीं तो कम-से-कम मानसिक महत्ता के लिए[१]।' लॉनजाइनस के इस कथन का अठारहवीं शताब्दी के इँग्लैंड की साहित्यिक विचार-धारा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन वक्तव्यों ने उस आलोचनात्मक प्रणाली की सहायता की जिसने दोषों के विपरीत गुण पर ध्यान दिया। इँग्लैंड में कम से कम नियमों के आधार पर टिकी आलोचना का पतन हुआ। मौलिक प्रतिभा का सिद्धान्त, नियमों की शक्ति का ह्रास, व्यक्तिगत भावनाओं की मान्यता और भव्यता का इन विचारों के साथ संसर्ग—यह थोड़ी-बहुत मात्रा में लॉनजाइनस के कारण है[२]।

लॉनजाइनस का विश्वास है कि त्रुटिहीनता नहीं प्रत्युत 'भव्यता' मनुष्य को देवत्व के निकट ले आती है। इसीलिए साहित्य की महान् प्रतिभाएँ यद्यपि त्रुटिपूर्ण होती हैं फिर भी (भव्यता के कारण) सामान्य मनुष्यों से ऊपर उठी होती हैं। 'अन्य विशेषताएँ अपने धारणकर्ताओं को मनुष्य प्रमाणित करती

---

१. "I remain unshaken in my opinion, that in all cases great excellence, althought not kept up to one level throughout, should always bear off first award, if for nothing else, yet for the sake of simple intellectual greatness." (Ibid. p. 61)

२. "The theory of original genius, the decline in the powers of rules and the rise of a realization of the validity of the individual impression, and the association of the sublime with these ideas—all of this is attributable in some degree to Longinus." (The Sublime of Samuel H. Monk p. 17)

है, भव्यता उनको ईश्वर की मानसिक महत्ता तक ऊँचा उठा देती है[१]।' इसी से उसे त्रुटिपूर्ण होमर, सोफोक्लिस, प्लेटो आदि पसंद हैं किन्तु त्रुटिहीन अपोलोनियस, लीसियस आदि नहीं। ये महान् प्रतिभाएँ अपनी एक महान् भव्यता से अपनी सारी त्रुटियों का प्रक्षालन कर देती हैं[२]।' इसका आशय यह हुआ कि सफल अंशों की गिनती नहीं करनी है उनके गुरुत्व को तोलना है।

त्रुटिहीन और त्रुटिपूर्ण का यह विचार आलोचनात्मक प्रगति की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लॉनजाइनस ने, पूर्णता की कसौटी के रूप में, त्रुटिहीनता को जो अमान्य ठहराया उसका कारण था। प्रायः लोग यह समझ बैठते हैं कि यदि नियमों का पालन पूरा-पूरा कर लिया गया तो कृति ठीक है। क्लासिकल युग में नियमों की अधिकता और उन पर विशेष आग्रह के कारण यह भावना और भी व्यापक तथा दृढ़ हुई। लॉनजाइनस का कहना है कि यह भ्रम है, नियमों का पालन इसे अधिक-से-अधिक दोषरहित बना देगा किंतु नियम-पालन मात्र से उसका समादर न होगा। उसका आदर तभी होगा जब उसमें भव्यता होगी। इसका आशय यह हुआ कि स्वयं कृति की समीक्षा हो और तत्संबंधी निर्णय पहले से बनाए हुए (दोष तथा सौंदर्य संबंधी) नियमों पर आश्रित न होकर कृति द्वारा प्रसूत प्रभाव पर आश्रित रहें। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार लॉनजाइनस ने नियमों की गौणता की घोषणा कर साध्य को सामने रख दिया।

इस प्रकार लॉनजाइनस के मतानुसार हमारा आदर्श भव्यता होना चाहिए त्रुटिहीनता मात्र नहीं। यह इसलिए भी कि भव्यता हमारे स्वभाव में है और प्रकृतिदत्त है। प्रकृति ने हमारे अन्दर भव्यता के प्रति सतत प्रेम का

---

१. "Other qualities prove those who possess them to be men, sublimity raises them almost to the intellectual greatness of God." (Ibid. p. 66)

२. "Successful passages are to not numbered but weighed. And weighing implies a scale of values. (Longinus and English Criticism. p. 105)

बीजारोपण कर दिया है, जिससे बाह्य प्रकृति की भव्यता देखकर हम आनंदित होते हैं। भव्यता से समन्वित इस प्रकृति ने हमारे अंदर महान् के प्रति जो अगाध प्रेम भर दिया है उससे मानव-स्वभाव में प्रकृत्या महत्ता आ गई है। इसी से हम छोटी धाराओं की (जो निर्मल और उपयोगी हैं) प्रशंसा न कर महान् नील, टाइबर या राइन नदी की, और सबसे अधिक सागर की प्रशंसा, करते हैं। इसी प्रकार हम अपने उपयोगी दीप की अपेक्षा (जो कि निर्मल प्रकाश देता है) एटना के ज्वालामुखी को अधिक आश्चर्यजनक मानते हैं। भव्यता और महत्ता के प्रति यह (आनन्द और) प्रेम हमारे स्वभाव का अंग बन गया है। लॉनजाइनस के शब्दों में 'यह प्रकृति का सत्य है कि उसको सुनते हैं जो सबसे अधिक शक्तिशाली है'[१]। 'प्रकृति ने निश्चित किया कि मनुष्य क्षुद्र या हीन पशु न होगा; जीवन और इस समस्त ब्रह्मांड में हमें प्रविष्ट कराते हुए (उसने) हमारी आत्माओं में उस (वस्तु) के प्रति अजेय और अमर प्रेम बो दिया जो कि महान् है और हमारे अपने मानदंड से, अधिक देवत्व से पूर्ण है। इसीलिए ऐसा है कि विचार और कल्पना के लिए—जो कि मानव-प्रयास के क्षेत्र के अन्तर्गत हैं—समस्त ब्रह्मांड अपर्याप्त है। हमारे विचार प्रायः उन सीमाओं के परे चले जाते हैं जो कि उन्हें सीमित करती हैं। यदि कोई चारों ओर के जीवन को देखे और देखे कि किस तरह सभी चीजों में असाधारण, महान्, सुंदर (वस्तु) सर्वोपरि हैं तो वह तत्काल जान जायगा कि किन उद्देश्यों के लिए हम लोगों का जन्म हुआ है[२]।'

---

१. "......It is a fact of nature that we listen to that which is strongest." (Ibid. p. 37)

२. "...Nature determined man to be no low or ignoble animal; but introducing us into life and this entire universe··· did them implant in our souls an invincible and eternal love of that which is great and , by our own standard, more divine. Therefore it is, that for the speculation and thought which are within the scope of human endeavour not all the universe, together is sufficient, our conceptions often pass beyond the

इसीलिए लॉनजाइनस भव्यता, महत्ता आदि से समन्वित कृति का पक्ष लेता है चाहे उनमें कला की दृष्टि से कतिपय त्रुटियाँ भी हों। उसका कहना है कि 'न विफलता होगी न दोष लगाया जायगा किंतु आश्चर्यान्वित हम महत्ता पर ही होते हैं[१]।'

प्रकृति को भव्य और भव्यता का स्रोत मानने के साथ लॉनजाइनस प्रकृति (जो सर्वोपरि है) और कला (जो मनुष्य द्वारा निर्मित और विकसित है उस) के पारस्परिक संबंध और उनके स्वरूप की चर्चा करता है। उसके विचार से दोनों के क्षेत्र अलग हैं। इसी से प्रकृति और कला के उद्देश्य और उनकी परख या जाँच की कसौटी भी भिन्न हैं। अप्रत्यक्ष रूप से उसका यही विचार है कि मनुष्य-निर्मित कला, मनुष्य तथा सृष्टि की निर्मात्री प्रकृति के समकक्ष नहीं हो सकती। प्रकृति सर्वोपरि है। कला का स्थान या दर्जा उससे नीचे है। इसलिए दोनों की परीक्षा की कसौटियाँ भी अलग-अलग हैं। उसका कथन है कि 'कला में यथातथ्य या अत्यंत शुद्ध कृति की प्रशंसा होती है, प्रकृति की कृतियों में महत्ता की। मनुष्य प्रकृत्या वाणीयुक्त प्राणी है; इसलिए मूर्तियों में हम मनुष्य की अनुरूपता की खोज करते हैं (और) वाणी में उसकी जो मानव-मापदंड का अतिक्रमण कर जाता है[२]।'

प्रकृति और कला के स्वरूप और उद्देश्य की भिन्नता बताने के साथ ही लॉनजाइनस मानों दोनों के अविरोध को स्पष्ट करने के लिए ही तत्काल दोनों

---

bounds which limit it; and if one were to look upon life all round and see how in all things the extraordinary, the great, the beautiful stand supreme, he will atonce know for what ends we have been born." (Ibid. p. 165)

१. "No failure, no blame; but greatness has our very wonder. (Ibid. 66).

२. "In art the most accurate work is admired, in the works of Nature greatness. Now it is by Nature that man is a being endowed with speech, therefore in statues we seek what is like man, in speech what surpasses, as I said, human standards." (Ibid. p. 67)

में संतुलन स्थापित करने की सलाह देता है और दोनों के पूरक होने की बात करता है। कला और प्रतिभा (या प्रकृति) की सफलता भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इसलिए कला को प्रकृति की सहायता के लिए लाना चाहिए : 'अकृत-कार्य न होने की सफलता (अधिक परिस्थितियों में) कला के कारण (होती) है, उच्च (किन्तु एकरूप नहीं) उत्कृष्टता की सफलता प्रतिभा के कारण। इसीलिए कला को प्रकृति की सहायता के लिए लाना चाहिए। जहाँ ये पारस्परिक रूप से उन्मुख होते हैं वहाँ पूर्णता का परिणाम होना चाहिए[१]।' एक अन्य स्थान पर वह कहता है कि 'कला उस समय पूर्ण है जब कि वह प्रकृति के समान प्रतीत हो या दिखाई पड़े और प्रकृति उस समय सफल होती है जब कि कला उसके तल में अलक्षित रूप से रहती है[२]।'

कहना न होगा कि लॉनजाइनस ने इस कथन के द्वारा कला की सीमा बताकर भी उसे प्रकृति का पूरक ही कहा और दोनों में सामंजस्य-स्थापन की बात कही। किन्तु इन्हीं उद्गारों को उद्धृत कर क्लासिकल शास्त्रवादियों और पूर्व-रोमांटिकों ने अपने मतानुरूप उनकी व्याख्या की। क्लासिकल शास्त्रवादियों ने प्रकृति को आदर्श नियामक बताकर नियमों को सर्वोपरि कह उनकी मान्यता पर विशेष आग्रह दिखाया और नियम-पालन की आवश्यकता बताई। रोमांटिकों ने अपने पक्ष में प्रकृति को महान् और नियमों में बद्ध न होनेवाली बताकर प्रतिभा को नियमों से परे घोषित कर भव्यता को वस्तुगत न मानकर आत्मगत स्वीकार कर (और इस प्रकार अन्तर्मुखी होकर) और कलात्मक नियमों की अपर्याप्तता का कथन कर (उनकी अवहेलना कर) रोमांटिक

---

१. "...the success of never failing is in most cases due to Art, the success of high though not uniform excellence, to Genius; that, therefore, Art should ever be brought into aid Nature; where they are reciprocal the result should be perfection." (Ibid. p. 67)

२. "For art is perfect just when it seems to be nature, and nature successful when the art underlies it unnoticed." (Ibid. p. 45)

सिद्धांतों की पुष्टि की। इस प्रकार आलोचना के इतिहास में उसका संबंध एक ओर तो शास्त्रवाद की प्रवृत्ति से जोड़ा गया और दूसरी ओर आलोचकों को उसमें पूर्व-रोमांटिकों और काण्ट के सिद्धान्तों के बीज दिखाई पड़े।

लॉनजाइनस-कृत भव्यता की यह चर्चा अपूर्ण ही मानी जायगी यदि इसी से संबंधित उसकी नैतिक मनोदृष्टि का संक्षिप्त उल्लेख न हो। लॉनजाइनस को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसने भावावेश और उसके आह्लाद को काव्य का लक्ष्य बताकर काव्य को उपादेयता, उपदेशात्मकता तथा नैतिकता के स्तर से ऊपर उठा दिया। एक सीमा तक सच होते हुए भी अन्य प्राचीनों के समान लॉनजाइनस काव्य-कृति को नैतिकता की भावना से सर्वथा मुक्त न कर सका। यूनानी और रोमन संसार, काव्य का संबंध नैतिकता से कुछ-न-कुछ जोड़ता ही रहा। लॉनजाइनस का विचार है कि भव्यतापूर्ण विचार और शब्दावली उन्हीं के द्वारा प्रसूत हो सकती है जिनका मानस विशाल है—'भव्यता वह स्वर है जो महान् मस्तिष्क से ध्वनित होता है।' 'महान् शब्द उन (के हृदय) से निकलते हैं जिनके विचार गुरु गंभीर हैं। इसलिए सर्वोच्च भावना-वाले मनुष्यों के अधरों पर ही असाधारण तथा असामान्य महत्ता के शब्द पाए जाते हैं।'' इस विचार में दृढ़ विश्वास रखने के कारण ही उसका कथन है कि 'सच्चे वक्ता को कदापि क्षुद्र तथा अनुदार भावना न रखनी चाहिए, क्योंकि यह असंभव है कि जो गुलामों के उपयुक्त छोटे विचारों को सोचते हैं और अपने समस्त दैनिक जीवन में उनको चरितार्थ करते हैं वे कोई ऐसी चीज प्रस्तुत कर सकें जो कि आश्चर्य और अमरता की पात्र बन सके[२]।' लॉनजाइनस इस प्रकार

१. "Great words issue...from those whose thoughts are weighty. So it is on the lips of men of the highest spirit that words of rare greatness are found." (Ibid. p. 15)

२. "...the true orator must have no low ungenerous spirit, for it is not possible that they who think small thoughts, fit for slaves, and practise them in all their daily life, should put out anything to deserve wonder and immortality." (Ibid. p. 15)

स्पष्ट कर देता है कि भव्यता चरित्र की उदात्तता पर आश्रित है। इस तरह वह कृति (के स्वरूप) तथा कृतिकार के बीच एक प्रकार के नैतिक संबंध की स्थापना करता है।

यह नैतिक संबंध लॉनजाइनस की दृष्टि में कितना महत्त्वपूर्ण है यह इस बात से स्पष्ट हो जायगा कि वह अपने ग्रंथ के अंत में तत्कालीन युग के वातावरण की व्याख्या इसी नैतिक मनोदृष्टि से करता है। एक दार्शनिक मित्र द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या बात है कि वर्तमान युग में भव्य महान् मस्तिष्क का जन्म नहीं हो रहा है वह यही जवाब देता है कि वर्तमान युग की धनलिप्सा तथा भ्रष्टाचार हमारे आत्मिक जीवन को खाए जा रहे हैं, आत्मा की महत्ता संकुचित होती जा रही है और अमरत्व को छोड़कर लोग विलास के दास हो रहे हैं। निम्नलिखित उद्धरण लॉनजाइनस की नैतिक मनोदृष्टि तथा उसकी मर्मस्पर्शिनी दृष्टि का पूर्ण परिचय दे रहा है—

'मैं यह नहीं समझ पाता कि यह कैसे संभव है कि लोग, जो कि असीम धन का अत्यधिक आदर करते हैं और सच तो यह है कि उसे देवता बना बैठे हैं, आत्मा में उन बुराइयों के प्रवेश को कैसे रोक सकते हैं जो उसके साथ संबद्ध हैं। धीरे-धीरे संपूर्ण जीवन का नाश हो रहा है। आत्मा की महत्ता संकुचित हो रही है और अनुकरणीय नहीं रह गई है। मनुष्य अपने अमर अंश को छोड़कर नश्वर अंगों की प्रशंसा में लगे हैं और जब हम अपनी आत्मा से ही लाभ का (वह चाहे जहाँ से आए) सौदा करते हैं तो क्या सचमुच हम यह आशा करते हैं कि जीवन की इस बरबादी के बीच महान् वस्तुओं और चिरंतन वस्तुओं का कोई स्वतंत्र और अदूषित (Uncorrupted) पारखी बच रहा होगा।...मैंने सामान्य व्याख्या प्रस्तुत की है कि हमारे आधुनिक चरित्र को जो खाए जा रहा है वह आलस्य है जिसमें कतिपय लोगों को छोड़कर हम सब रह रहे हैं[१]।'

× × × ×

१. "I try to reckon it up, but I cannot discover how it is possible that we who so greatly honour boundless wealth, to speak more truly, make it a god, can fail to receive into our souls the kindred evils which enter with it... little by little the ruin

लॉनजाइनस के सिद्धान्तों का उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय भी पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा उसकी अपूर्व मौलिक तथा मर्मभेदी दृष्टि का संकेत देने में समर्थ है। यह अत्यंत संक्षिप्त परिचय भी बतला रहा है कि प्राचीनों में उसकी गणना होने पर भी उसमें बहुत कुछ ऐसा है जो उसे आधुनिक बनाकर नवीनों के सन्निकट ले आता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि लॉनजाइनस के इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य आरंभ में भाषण-कला (Rhetoric) से संबंधित था और उसने जो विचार किया है वह मुख्यतया शैलीगत है, फिर भी उसकी परिणति काव्यगत मूल समस्याओं में होती है और उसके जो निष्कर्ष हैं वे भाषणगत न रहकर साहित्यगत या काव्यगत बन जाते हैं। उसने भावगत तथा भाषागत सौन्दर्य की छानबीन कर काव्य की आत्मा में पैठने की कोशिश की। यह इसलिये संभव हुआ कि उसकी दृष्टि तत्कालीन नियमों के घेरे में बद्ध न रहकर उनका अतिक्रमण कर गहराई में जा सकी और इस तरह सभी प्रकार के साहित्यिक रूपों की मलभूत समानताओं का संकेत दे सकी। उसने जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया उनमें काव्य या साहित्य की मूल वृत्तियों या विशेषताओं का भी समाहार हो गया। उसका भव्यता का सिद्धान्त किसी विशिष्ट साहित्यिक रूप या प्रकार तक सीमित नहीं है। इसी प्रकार उसका 'भावावेश' का सिद्धान्त किसी प्रकार की नैतिकता की डोरी से नहीं बँधा है। भाषणकला (Rhetoric) तथा काव्य के लक्ष्य

---

of their whole life is effected; all greatness of soul dwindles and withers, and ceases to be emulated, while men admire their own mortal parts, and neglect to improve the immortal..and where we purchase with our soul gain from wherever it comes..do we really expect, amidst this ruin and undoing of our life, that any is yet left a free and uncorrupted judge of great things and things which reach to eternity. I gave the general explanation that what eats up our modern characters is the indolence in which, with few exceptions we all now live..." (Ibid. p. 81)

का भेद भी उसकी निर्मल दृष्टि का परिचायक है। इसी प्रकार 'त्रुटिहीनता' के सिद्धान्त का तिरस्कार (और उसे पूर्णता की कसौटी के रूप में अमान्य ठहराना) भी आलोचनात्मक प्रगति की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसने जो काव्यात्मक विवेचना प्रस्तुत की उससे उसका यह भी आग्रह स्पष्ट हुआ कि किसी कृति का मूल्यांकन पहले से बने हुए नियमों को उस पर न घटाकर कृतिजन्य और तद्गत उत्कृष्टता या कलात्मकता के आधार पर होना चाहिए। नियमों की महत्ता को अपदस्थ कर उसने कृति-विशेष को महत्ता प्रदान की।

इस प्रकार यद्यपि लॉनजाइनस का प्रभाव बाद में पड़ा और बहुत कुछ सीमित रहा फिर भी उसकी महत्ता अरस्तू से किसी प्रकार कम नहीं है। यदि अरस्तू ने साहित्यिक कृति के अवयवों पर विचार किया तो लॉनजाइनस ने उसकी आत्मा को जानने की चेष्टा की। यदि अरस्तू की विचारणा-शैली विश्लेषणात्मक अधिक है तो लॉनजाइनस की काव्यगत (Aesthetic)। लॉनजाइनस को जो प्राचीनों तथा नवीनों से समान संमान मिला वह अत्यंत उपयुक्त ही था। वह इसका सर्वथा अधिकारी था।

मध्ययुग

मध्ययुग को पहले जितना 'अंधकार का युग' कहा जाता था, अब उसे उतना तमपूर्ण नहीं माना जाता। यह युग भी जिज्ञासा और महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक, कलात्मक तथा साहित्यिक क्रियाकलाप का साक्षी है, करीब-करीब ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर लगभग पंद्रहवीं शती तक के एक हजार वर्ष के लम्बे समय (जिसके बाद कि पुनरुत्थान या Renaisance का युग माना जाता है) का यद्यपि (साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में) इतना मौलिक महत्त्व नहीं है फिर भी उसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। समीक्षा के जो सिद्धांत इस समय निःसृत हुए वे यद्यपि पूर्णतया स्वच्छंद चिंतन के परिणाम नहीं थे और यद्यपि उनकी भावना युग के साहित्येतर कारणों से प्रभावित और रंजित थी, फिर भी वे पूर्वकथित सिद्धांतों की पुनरावृत्ति मात्र नहीं थे।

× × × ×

मध्ययुग के आलोचनात्मक क्रियाकलाप के संबंध में कुछ भी कहने के पूर्व तत्कालीन परिस्थिति और उन साहित्यिक परंपराओं के संबंध में कुछ कहना आवश्यक है जो कि मध्ययुग के पूर्व की शताब्दियों से उसे प्राप्त हुईं। आगस्टस के समय से रोमन संसार में राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए, जब कि एक बड़ा साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हुआ। ईसा की प्रथम दो शताब्दियों के बाद व्यापक अराजकता का समय आया। 'इस बीच रोमन साम्राज्य पूर्वी (ग्रीक) और पच्छिमी (रोमन) दो टुकड़ों में टूट गया। पाँचवीं शताब्दी में आक्रमणों ने इस विशृंखलन को पूर्ण कर दिया, और ईसाइयत निषिद्ध रहने के स्थान पर शासकों का धर्म और राष्ट्र का धर्म बन गई। इस प्रकार योरुप की सभ्यता, योरुप का राजनीतिक स्वरूप बदल गया और प्राचीनता से नवीनता की ओर संक्रमण प्रवर्तित हुआ। इस उथल-पथल के फलस्वरूप रोम का महत्त्व लुप्त हो गया और पश्चिमी योरुप पर पाँचवीं शताब्दी के बाद अंधकार का अभेद्य पर्दा पड़ गया, जिसके साथ राजनीतिक अस्तव्यस्तता और मानसिक

पक्षपात का आगम हुआ[१]।' इस समय के बाद विद्या का ह्रास हो गया, प्राचीन ग्रंथ लुप्त हो गए और रोमन शैक्षिक विधान का, जिसने कि पच्छिम (योरुप) में प्राचीन अध्ययन के क्रम को बनाए रखा था, सहसा अन्त हो गया। ज्ञानार्जन की पूर्व परंपराएँ नष्ट हो गईं और बौद्धिक कार्यकलाप से लोगों के मन विरत हो गए।

फिर भी अंधकार के इस युग में प्राचीन संस्कृति से संबंध कुछ-न-कुछ बना ही रहा और बिल्कुल नहीं टूट गया। रोमन स्कूलों के नष्ट हो जाने पर शिक्षण का कार्य चर्च या ईसाई धर्म ने अपने ऊपर ले लिया। विरोध के बावजूद भी, अन्त में उदार प्रवृत्तियाँ प्रबल हुईं और पादरियों को अपने कार्य के उपयुक्त बनाने के लिए लौकिक विद्याओं को प्रोत्साहन दिया गया, यद्यपि इनमें थोड़ा रूपान्तर अवश्य हुआ। तथाकथित 'सप्त कलाएँ' (व्याकरण, साहित्यशास्त्र, और तर्क तीन ये और गणित, ज्यामिति, संगीत तथा ज्योतिष चार ये—इस प्रकार सप्त कलाएँ) शिक्षा का आधार बनीं और ये सब धर्माभिमुख की गईं। इस प्रकार मध्ययुगीन शिक्षा की नींव पड़ी, जिसके केंद्र ग्यारहवीं शती के अन्त तक मठ और चर्च के स्कूल बने रहे। इस स्थिति ने इस विद्या और शिक्षा को धार्मिक उद्देश्यों का अनुगामी बना दिया और उसका स्वतंत्र और स्वच्छंद रूप अक्षुण्ण न रह सका। इसके साथ ही साहित्य के प्रति प्रचलित धारणाओं

---

१. "In the meantime Roman world dominion had split up into Eastern (Greek) and Western (Roman) sections; barbarian inrods into the fifth century had completed the disruption; and Christianity, far from being proscribed, had become the faith of Imperial house, the recognised state religion. Thus was transformed the political face, the civilisation of Europe; a transition, in short, was being effected from the old world to new. ..But in the West, after the fifth century, an impenetrable darkness gradually fell, accompanied by political class and an intellectual paralysis."

(English Literary Criticism—The Mediaeval Phase : J. W. H. Atkins, p. 8.)

और भावनाओं का चर्च द्वारा नियंत्रण होने लगा और उनमें परिवर्तन प्रस्तुत हुआ। साहित्य-संबंधी मध्ययुगीन मनोदृष्टि और सिद्धांतकथन की कुंजी और व्याख्या इसी (चर्च द्वारा नियंत्रण के) तथ्य में निहित है तथा इनकी सीमा, त्रुटियों और पूर्वग्रह के कारण भी इसी में मिलेंगे।

× × × ×

साहित्य-विकास के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ग्रीक के स्थान पर लैटिन संस्कृति की आधारशिला बन गई। तीसरी शताब्दी के मध्य में लैटिन रोमन चर्च की भाषा बनी, इसलिए पश्चिमी योरुप की साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। फलतः पश्चिमी योरुप ने लैटिन सांस्कृतिक परंपराओं के साथ लैटिन को साहित्यिक माध्यम के रूप में स्वीकार किया और ग्रीक विचारों से संबंधत्याग हो गया जो कि केवल सोलहवीं शती के पुनरुत्थान के समय पुनर्जीवित किए गए। 'इसका परिणाम यह हुआ कि न केवल ग्रीक साहित्य की महान् कलाकृतियाँ प्रत्युत प्लेटो अरस्तू की साहित्य-संबंधी शिक्षाएँ भी अप्राप्य हो गईं और आलोचनात्मक क्षेत्र में पथप्रदर्शन के लिए मध्ययुगीन लेखकों के वास्ते केवल लैटिन-ज्ञान का ही सहारा रह गया [१]।'

किन्तु इतना ही नहीं, जिस प्रकार इस समय यूनान का साहित्यिक प्रभाव क्षीण हो रहा था उसी प्रकार साहित्यिक मामलों में क्लासिकल रोम का प्रभाव भी मंद पड़ रहा था। चौथी शताब्दी के अन्त तक लैटिन साहित्य से लोगों का व्यापक परिचय बना रहा, किन्तु इस समय के बाद से—राजनीतिक उथल-पथल के बीच—लैटिन संस्कृति के प्रसारण में गंभीर अवरोध उपस्थित हुआ, आगे आनेवाली शताब्दियों को केवल 'साम्राज्यवादी युग' के साहित्यिक मानदंड और प्रभाव प्राप्त हुए (जिनमें शैली या रिहटोरिक्स का रंग प्रधान था)।

---

१. "It is sufficient to say that to the Middle Ages, not only the masterpieces of Greek Literature but also the teachings of Plato, Aristotle and others on literature remained closed books;......It was upon Latin learning practically alone that mediaeval writers were to draw." (English Literary Criticism : The Mediaeval Phase, J. W. H. Atkins, p. 13.)

'रिपब्लिकन रोम' की रचनाओं से लोग अपरिचित ही रहे या ये रचनाएँ अविज्ञात ही रहीं तथा 'क्लासिकल' युग की रचनाओं में से केवल वे ही सबसे अधिक पसंद की गईं जो ईसाइयत के विचारों के सबसे अधिक निकट थीं और इसलिए धार्मिक कार्यकलाप के काम की थीं। सबसे बड़ी बात यह हुई कि साहित्य-सिद्धांत-संबंधी वह महत्त्वपूर्ण व्यापक साहित्य भुला दिया गया जो कि रोम के क्लासिकल युग की विशेषता थी और जिसमें प्राचीन कला तथा साहित्य के मूलभूत सिद्धांतों का आलोचकों द्वारा प्रतिपादन हुआ था। 'ऐसे सिद्धान्त जिनमें काव्य और गद्य दोनों के मूलभूत तत्त्वों की ठोस पकड़ थी और जो प्रक्रिया तथा रचना-विधान के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूझ-बूझ देनेवाले थे और जो कि इस विशेष युग या समय में दृष्टि को निर्मल बना देते और सारे पश्चिमी योरुप के साहित्यिक इतिहास की प्रवाह-गति को ही महत्त्वपूर्ण ढंग से बदल देते[1]।'

× × × ×

यूनान और रोम की महत्त्वपूर्ण साहित्य-समीक्षा के लोप से स्वाभाविक और अनिवार्य ही था कि इस युग की आरम्भिक शताब्दियों में साहित्यिक विचार-विमर्श और सिद्धान्त-प्रवर्तन में विशेष रुचि न दिखाई पड़ती। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि साहित्य की स्वतः भावना ही धूमिल और भ्रान्त हो गई थी। साथ ही नई परिस्थितियाँ यूनानी रोमन सिद्धांतों में विशिष्ट रूपान्तर प्रस्तुत कर रही थीं। साहित्य के संबंध में तत्कालीन प्रचलित भावनाओं के संबंध में यह है कि चर्च निस्संदेह रूप से व्यापक प्रभाव डाल रहा था, यद्यपि यह कहना ठीक न होगा कि प्राचीन साहित्यिक परंपरा के पूर्ण विशृंखलन का उत्तरदायित्व चर्च

---

१. "Those principles had embodied firm grasp on the essentials of both poetry and prose, while affording valuable insight into matters of technique and workmanship—all of which would have cleared the vision at this particular date, and have altered materially the course of literary history throughout Western Europe." (English Literary Criticism. : The Mediaeval Phase, J. W. H. Atkins, p. 15.)

पर है। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि चर्च ने साहित्य के सम्यक् आकलन में आरंभ से ही बाधा उपस्थित की और इसका रुख अधिकांश में विरोधी था। इस स्थिति का कारण लैटिन धर्मप्रचारकों (Fathers) के वे उद्गार थे जो कि आरंभिक धार्मिक जोश की लहर में निकले और जो बाद के युगों को निश्चित 'फतवा' के रूप में सौंपे गए। तरतूलियन ने साहित्य को 'खुदा की नजरों म बेवकूफी' बताया। उसने साहित्य की धार्मिक, नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक आधारों पर भर्त्सना की और कहा कि 'एथेन्स का जेरुसलम से क्या नाता ?' इसी प्रकार जेरोम, अगस्टाइन और ग्रेगरी ने साहित्य की निंदा की। जेरोम ने काव्य को 'शैतान का भोजन' कहा और ग्रेगरी का कहना है कि "ईसा की प्रशंसा उन्हीं अधरों से नहीं की जा सकती जिनसे कि जोव की प्रशंसा।" इस प्रकार इस तरह के उद्गारों ने पूरे मध्ययुग में साहित्य को अमर्यादित करने की दलीलें प्रस्तुत कीं, यद्यपि व्यवहार में ऐहिक साहित्य (नाटक के अतिरिक्त) का पूर्ण बहिष्कार कभी संभव न हो सका।

इस प्रकार साहित्य के प्रति ऐसी धारणा प्रचलित हुई जिसे कि चर्च ने इन आरम्भिक शताब्दियों में आश्रय दिया और प्रोत्साहित किया। यदि केवल चर्च के इन उद्गारों की ही बात होती तो चर्च का रुख स्पष्ट हो जाता और ठीक से समझ में आ जाता, किन्तु क्लासिकल साहित्य की महत्ता की भावना जो कि मन में अत्यंत गहरी थी स्थिति को जटिल बना रही थी। बात यह थी कि जेरोम, अगस्टाइन, तरतूलियन जैसे व्यक्ति, जो कि इस साहित्य के गुण और शक्ति से परिचित थे, इस ऐहिक साहित्य का साहित्यिक नहीं प्रत्युत व्यावहारिक दृष्टि से चर्च की सेवा में उपयोग करना चाहते थे, और ऐसा करने के लिए दलीलें पेश कर रहे थे। फलतः आरम्भिक विरोध के होते हुए भी ग्रीक और रोमन साहित्यिक परंपरा का मान बहुत कुछ बना रहा, उसके साहित्यिक सौन्दर्य का कुछ-न-कुछ आस्वादन किया जाता रहा और सबसे बड़ी बात यह कि शैक्षिक तथा व्यावहारिक कार्यों के लिए उसकी उपयोगिता मान्य हो गई।

इसके साथ ही परिवर्तित परिस्थितियाँ नए साहित्यिक आदर्शों और रूपों को सामने प्रस्तुत कर रही थीं, जिनका कि प्राचीन साहित्य से कोई संबंध न था और जो ग्रीक-रोमन साहित्यिक परंपरा को निश्चित रूप से प्रभावित तथा

रूपान्तरित कर रहे थे। बाइबिल-साहित्य के साहित्यिक सौन्दर्य की जो चर्चा अब होने लगी उसमें सबसे पहले इस प्रवृत्ति के दर्शन हुए। यह बाइबिल-साहित्य अब तक सामान्यतया प्राचीन आलोचना की सीमा के बाहर ही रहा। इस क्षेत्र में जेरोम की प्रेरणा ही मुख्य रूप से काम कर रही थी। वह बड़े उत्साह से धर्मगीतों (psalms) के 'सामंजस्य,' 'सालोमन के गीत' की शालीनता और 'जाब' की पूर्णता की चर्चा करता है। उसने इस प्रकार बाइबिल-साहित्य की उन साहित्यिक विशिष्टताओं को सामने रखा जिनकी ओर अभी तक लोगों की दृष्टि नहीं गई थी।

इस प्रकार साहित्यिक सीमा के अन्तर्गत बाइबिल-साहित्य के समावेश से साहित्यिक दृष्टि और परिधि को जो व्यापकता प्राप्त हुई उसने साहित्य की परंपरागत भावना को काफी प्रभावित और रूपांतरित किया और उसे व्यापक बनाया। ईसाई धार्मिक साहित्य के आगमन ने—जो तीसरी शताब्दी से सातवीं शती तक फला-फूला और जिसमें क्लासिक साहित्य के मानदंडों से पृथक् तत्त्व संनिविष्ट थे—इसे और भी अप्रत्यक्ष रूप से रूपान्तरित किया। यह साहित्य आरंभ से ही चर्च के अधीन रहा और उसकी सेवा में लगा रहा। बाइबिल की कथावस्तुओं का महाकाव्यों के लिए उपयोग क्लासिकल परंपरा से सर्वथा पृथक् नए प्रयोग का संकेत है। इसी प्रकार अन्य साहित्यिक संभावनाएँ भी उद्घाटित हुईं (जैसे गीत, नया छंद-विधान)।

इस प्रकार मध्ययुगीन धार्मिक भावना ने पूरे साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला। फलत: मध्ययुगीन समीक्षा-सिद्धान्त भी धार्मिकता से अनुरंजित हो गए और काव्य-सिद्धान्तों की चर्चा में धर्माभिमुख आलोचना की विचारधारा की झलक आने लगी। बोकेशियो के काव्य-समर्थन में धर्माभिमुख आलोचना स्पष्ट रूप से मिलती है। उसका कहना है कि काव्य और धर्म एक हैं: "मैं कहता हूँ कि धर्म और काव्य को एक ही चीज कहा जा सकता है, जब कि उनका वस्तुविषय एक होता है। मैं यह भी कहता हूँ कि धर्म ईश्वर के काव्य को छोड़कर और कुछ नहीं है[1]।"

× × × × ×

---

१. "I say that theology and poetry can be called almost the same thing, when they have the same subject; I even say that

अन्योक्ति या अन्यापदेश (Allegory) को साहित्य के क्षेत्र में जो स्थान दिया गया वह इस युग की नवीन उद्भावनाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसका समीक्षा-सिद्धांत पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा और फलतः स्वतः इससे एक और सिद्धान्त उद्भूत हुआ। काव्य के अवयवीय तत्त्व के रूप में अन्योक्ति की भावना प्राचीन साहित्य-सिद्धान्त का कभी अंग न थी। समकालीन साहित्यशास्त्री 'नरत्व का रूपक' (Personification) के चलन को बढ़ावा दे रहे थे, और बाद में अन्योक्ति की प्रवृत्ति को ईसाई लेखकों से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जो अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के थे और जिनका रुझान गोचर लोक के पीछे छिपे हुए दूसरे लोक की ओर था। ऐसी परिस्थितियों ने इस समय साहित्यिक रचनाओं के बीच अन्योक्ति के आगम को प्रेरणा दी। आगे चलकर अन्योक्ति के इस आन्दोलन ने पूरे साहित्य को प्रभावित किया।

किंतु जहाँ इन आरंभिक शताब्दियों में अन्योक्ति की ओर रुझान लक्षित हो रहा था वहाँ यह विचार भी धीरे-धीरे निर्मित हो रहा था और पनप रहा था कि समस्त साहित्य में अन्योक्ति का तत्त्व सन्निविष्ट रहता है। अपने पवित्र और धार्मिक साहित्य की व्याख्या के संबंध में चर्च द्वारा गृहीत उपायों के फलस्वरूप अन्योक्ति-संबंधी यह विचार धीरे-धीरे अंकुरित और पुष्पित हो रहा था। धीरे-धीरे यह अन्योक्तिपरक व्याख्या बाइबिल-संबंधी व्याख्या की मान्य और स्वीकृत शैली बन गई, जिसमें बाइबिल की अभिधामूलक, वैयक्तिक (Typical) और नैतिक—जिसे जेरोम, अगस्टाइन, ग्रेगरी आदि ने अपनाया—तेहरी व्याख्या होती थी। यह शैली बाइबिल-संबंधी रचनाओं तक ही सीमित न रही। वर्जिल की रचनाओं में लोगों को छिपे हुए अर्थ दिखाई पड़ने लगे थे। 'कांटीनेन्शिया वर्जिलियना' में फुलगेंटियस (छठी शताब्दी) ने वर्जिल के 'एयनीड' की मानव-जीवन के प्रतीक रूप में व्याख्या की थी। यह ईसाई वैयाकरण द्वारा ऐहिक काव्य की व्याख्या में अन्योक्तिपरक पद्धति के प्रयोग का प्रथम योजनाबद्ध

---

theology is none other than the poetry of God." (Literary Criticism : A Short History, William K. Wimsalt, J. R. & Cleanth Brooks, p. 152.)

रूप था। इस प्रकार व्याकरण इस भावना द्वारा साहित्य-समीक्षा के निकट आया कि काव्य के पाठों में अभिधात्मक तथा अन्योक्तिपरक अर्थ स्वभावतया विद्यमान रहते हैं और इनकी व्याख्या होनी चाहिए। यहाँ व्याकरण उस मनो-दृष्टि के साथ उपादान-रूप में संयुक्त हुआ जो कि धर्म के व्याख्याता-रूप में चर्च के धर्माधिकारियों और मध्ययुगीन धर्माचार्यों का था कि यह सृष्टि ईश्वर की प्रतीकात्मक पुस्तक है, यह संसार वह खोल या आवरण है जिसके भीतर आन्तरिक अर्थ रहता है, या यह छिपे हुए अर्थ का आवरण है या उच्च अर्थ का निम्न प्रतीक है।

इस प्रकार इन आरंभिक शताब्दियों में इस सिद्धान्त का प्रवर्तन हुआ कि समग्र साहित्य की अन्योक्तिपरक व्याख्या की जा सकती है। इससे इस विचार का उद्भूत हो जाना या इस स्थिति पर पहुँच जाना कि अन्योक्ति समस्त साहित्यिक सर्जना का अंग है कोई कठिन बात न थी। अन्योक्ति-संबंधी "इस सिद्धान्त ने—जो कि ग्रीक रोमन परम्पराओं से सर्वथा पृथक् था—'मध्ययुग' पर ऐसी गंभीर छाप डाली जैसी कि किसी अन्य वस्तु ने न डाली, जो कि इसे विरासत रूप में प्राप्त हुई थी। इसका मूल चाहे इन आरम्भिक शताब्दियों की कतिपय बौद्धिक प्रवृत्तियों में खोजा जा सके फिर भी सिद्धान्त-रूप में इसकी मान्यता चर्च के अपने रुख या अपनी भावना के प्रभाववश ही निस्संदेह प्रतिष्ठित हुई थी और जो कि आनेवाली पीढ़ियों के शिक्षण में महत्त्वपूर्ण योग देनेवाली थी। आगे चलकर यह सिद्धान्त काव्य की 'मध्ययुगीन' भावना में स्थान प्राप्त करनेवाला था और रचित काव्यों को अपने रंग से रंजित करनेवाला था। इस संबंध में पेट्रार्क का यह कथन कि 'अन्योक्ति समस्त काव्य का प्राण है' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है[१]।"

---

१. "This doctrine which represented a departure from Graecoroman tradition, was to impress the Middle Ages as did perhaps no other part of its inheritance..If its origin may be traced to certain intellectual tendencies of these early centuries, its recognition as a theory was doubtless influenced by the attitude of Church, which was to play so great a part in the instruction of later generations. Subsequently it was

'यह कहा जा सकता है कि प्रतीकात्मकता का ग्रहण सामान्य रूप में मध्ययुगीन (व्याकरण, साहित्य-सौंदर्य, धर्म-संबंधी) विचारधारा का मुख्य सूत्र था, जिसका काव्य-सिद्धान्त पर गहरा प्रभाव था। साहित्यिक रचना के संबंध में मध्ययुगीन प्रतीकात्मक सिद्धान्त का प्रसिद्ध उदाहरण दांते का वह पत्र है जिसे कि उसने कैन ग्रैंडी डेला स्काला को अपनी रचना 'डिवाइन कमेडी' की व्याख्या करते हुए लिखा था और जिसमें धार्मिक व्याख्या के उदाहरण का अनुकरण करते हुए उसने न केवल अभिधात्मक अर्थ की अपितु तीन उच्च अर्थों—प्रतीकात्मक, आध्यात्मिक और वैयक्तिक या नैतिक—की योजना की। हम कह सकते हैं कि यह स्वाभाविक स्फुरण से लिखित धार्मिक कविता की व्याख्या और समर्थन में धार्मिक पद्धति का उपयोग है[१]।'

---

to enter into mediaeval conception of poetry, giving colour to not a little of the work actually produced; and significant in this connection is Petrarch's later definite pronouncement that allegory is the very warp and woof of all poetry". (English Literary Criticism—The Medieval Phase, J. W. H. Atkins, p. 23.)

१. "One may say that the recognition of symbolism in general was a strain of mediaeval thinking (grammatical, aesthetic and theological) which....had deep implications for the theory of poetry. The classic appearance of symbolistic doctrine in mediaeval writing upon a literary subject is that in Dante's letter to Can Grande Della Scala (prefixed to the Paradise) in which...following the lead of the scriptural Exegetes, he finds, or has put into his works not only a literal meaning..but three higher levels of meaning, the allegorical, the anagogical and the tropological. This we might say is scriptural method put to the explication of religious poetry written by natural inspiration."

(Literary Criticism: A Short History, William K. Wimsalt, J. R. & Cleanth Brooks, p. 148.)

इन शताब्दियों में कला के रूप में काव्य की भावना धूमिल पड़ गई थी और अस्पष्ट हो गई थी। स्वतंत्र वस्तुविषय के रूप में काव्य का अध्ययन—जिसके कि अपने सिद्धान्त ह—बंद हो गया था। फलत: 'पोयटिक्स'-जैसे ग्रंथ अब इस समय नहीं मिलते हैं। काव्य के संबंध में जो भी विचार हुआ वह स्वतंत्र रूप में नहीं प्रत्युत उसे अन्य विद्याओं की शाखा मानकर। इसका संबंध व्याकरण के साथ—शुद्ध अभिव्यक्ति के पथ-प्रदर्शन के रूप में—जोड़ा गया। सामान्यतया काव्य की भावना 'रि्हटोरिक' (Rhetoric) की शाखा रूप में हुई। पहली शताब्दी के कवि उत्साह के साथ वाक्पटुता की युक्तियों की साधना करने लगे। वक्ताओं ने कवियों का अनुकरण किया और कवियों ने वक्ताओं का। इसके साथ 'रि्हटोरिक' को केवल शैली के विचारार्थ सीमित किया जाने लगा और इसमें काव्यशैली तथा भाषण-शैली या गद्य दोनों का समावेश माना जाने लगा। इस प्रकार काव्य पद्यमय 'रि्हटोरिक' माना जाने लगा और 'रि्हटोरिक' ने कुछ रूपों में आरम्भ के काव्यशास्त्र (Poetic) का कार्य अपने ऊपर ले लिया। 'संक्षेप में पूरे मध्ययुग में रि्हटोरिक ने काव्य को अपने में आत्मसात् कर लिया और काव्य का अध्ययन तात्त्विक महत्त्व की बातों को छोड़कर तत्कालीन रि्हटोरिक-संबंधी शिक्षाओं तक सीमित रह गया।[१]'

कतिपय सामान्य कथनों से अधिक काव्य-सिद्धान्त के विषय में कुछ न कहा गया, यद्यपि कतिपय साहित्यिक रूपों (Forms) के विषय में जो कुछ कहा गया वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। कमेडी (सुखान्त) और ट्रेजेडी (करुण नाटक) की जो परिभाषाएँ दी गईं उनका प्रभाव सोलहवीं शती के पुनरुत्थान (Rennaisance) तक बना रहा। ट्रेजेडी (करुण नाटक) 'विपत्ति में पड़े उदात्त (या अर्धदैवी) पात्रों की कथा है या कामनवेल्थ या राजाओं की दुःखमय कथा है।' 'Elgiac छंद में लोक-प्रचलित शैली में सुखद अन्त से युक्त कथा' कमेडी

१. "In short, rhetoric throughout the Middle Ages was to absorb poetic ; and the study of poetry was to be limited by the current rhetorical teaching, to the exclusion of matters of more essential import." (English Literary Criticism—The English Phase, J. W. H. Atkins, p. 30.)

(सुखान्त) मानी जाने लगी। इस भावना ने बारहवीं शती में एक नए साहित्यिक रूप—मध्ययुगीन कमेडी—को जन्म दिया जो छंदबद्ध कथा के अतिरिक्त और कुछ न था। कमेडी (सुखान्त) के लिए यह भी कहा गया कि यह कथा है जिसमें 'दैनिक जीवन संबंधी विविध शिक्षा हैं जिससे जीवन में जो कुछ उपयोगी है और जिससे बचना चाहिए, सीखा जा सकता है।' साथ ही 'कमेडी जीवन का अनुकरण है, रीतिनीति का दर्पण और सत्य की प्रतिमूर्ति है।' इस प्रकार यह परंपरा चली कि ट्रेजेडी (करुण) में 'राजकुमारों के दुःखमय पतन' की कथाएँ रहती हैं और कमेडी (सुखान्त) में साधारण लोगों की कथाएँ हैं, जिनका अन्त सुखमय होता है। इस प्रकार नाट्यरूपविहीन मध्ययुगीन ट्रेजेडी (करुण) और कमेडी (सुखान्त) के आविर्भाव का पथ प्रशस्त हुआ।

× × × ×

मध्ययुग पर जिन विचारकों के सिद्धान्तों का व्यापक प्रभाव पड़ा है उनमें प्लाटिनस मुख्य है। उसके विचारों को 'नवप्लेटोवाद' (Neo-Platonism) का नाम दिया गया है।

प्लाटिनस का दर्शन सत् (Being) का दर्शन है जो उस परम दैवी एक से निःसृत होकर उसी में मिल जाता है। यह संसार आभास है और वास्तविकता उस परम एक में है। आत्मा, बुद्धि, एकत्व=एक प्रकार की 'त्रयी' (Trinity)—आणविक (Microcosmic) और विराट् (Macrocosmic) पक्ष तथा प्रतिपक्ष रूप में इस संसार की वैयक्तिक वस्तुओं में समस्त संसार में, तथा उस परम में प्रकट होते हैं। वस्तुतः हमारी चेतना के आन्तरिक परिज्ञान से स्तरयुक्त या श्रेणीयुक्त विश्व का प्रसार होता है। दैवी आत्मा संसार की ओर देखती हुई इसकी सर्जना करती है और इसे आधार देती है। बुद्धि की ओर देखती हुई आत्मा बुद्धि के विचारों को, संसार के रूपों को, प्रतिबिम्बित करती है और बुद्धि उस एक को देखती हुई एक में अतिक्रमण कर जाती है, जो कि सत् या रूप का मुख्य सिद्धान्त है, जो प्रथम वस्तु है और इसलिए शिव है। वह एक इतना शुद्ध और सरल है कि हम उसकी भावना केवल सूक्ष्मतया नकरात्मकता के द्वारा ही कर सकते हैं।

सौंदर्य से संबंधित मनोदृष्टि ऐसे उद्गारों में लक्षित होती है। एकत्व ही आधारशिला है जिस पर सौंदर्य प्रतिष्ठित होता है, विचारात्मक रूप (Ideal form) वस्तुओं में एकता लाता है। विचार एकत्व (Unity) है। एकत्व का सिद्धान्त ही सब वस्तुओं का धारणकर्ता है। 'एकत्व के गुण के कारण ही सत्ताधारी सत्ताधारी हैं।...कौन-सी चीज, एक चीज, एक या इकाई के रूप के बिना बनी रह सकती है। एकता-विहीन होने पर वह चीज वह नहीं रह जाती है जो कि वह कहलाती है। इकाई या एकता के रूप के बिना फौज नहीं; सहगान झुंड को एक चीज होना चाहिए, यहाँ तक कि मकान और जहाज भी एकता की माँग करते हैं—एक मकान, एक जहाज; एकता चली जाने पर एक भी नहीं रह जाता। पेड़ और पशु को लीजिए। भौतिक रूप एकता में रहता है। टुकड़ों के ढेर में नष्ट होकर वस्तुओं ने अपने अस्तित्व को खो दिया, जो पहले था वह अब नहीं है। इसकी जगह दूसरी वस्तुओं ने ले ली—जिनकी कि अपनी एकता है[१]।'

'जहाँ विचारात्मक रूप (Ideal Form) का समावेश हुआ वहाँ इसने अव्यवस्था को सहकारिता में बदल दिया। इसने पूर्ण को सामंजस्यपूर्ण संबद्धता दे दी, क्योंकि विचार (Idea) एकता या इकाई (Unity) है, और जिसे यह (विचार) ढालता है उसे एकता प्राप्त ही होनी चाहिए, जहाँ तक कि अनेकता इसे प्राप्त कर सकती है।

---

१. "It is in virtue of unity that beings are beings,...... what could exist at all except as one thing ? Deprived of unity a thing ceases to be what it is called : no army unless as a unity ; a chorus, a flock, must be one thing. Even house and ship demand unity, one house, one ship ; unity gone neither remains.

Take plant and animal ; the material form stands a unity, fallen from that into a litter of fragments, the things have lost their being ; what was is no longer there, it is replaced by quite other things—as many others precisely, as possess unity." (Ennead VI, IX, I.)

और जो इस प्रकार एकता में संबद्ध कर दी गई है,'उस पर सौंदर्य अपने को सिंहासनस्थ करता है, अपने-को उसी प्रकार अंग में ढालता हुआ जिस प्रकार कि अंगी में। इस प्रकार उदाहरणत: अपने अंगों से युक्त मकान में कलात्मकता द्वारा प्रदत्त सौन्दर्य है और उस एक पत्थर में भी जिसे कि कोई प्राकृतिक गुण सौंदर्य दे दे[१]।'

इस प्रकार प्लाटिनस का एकता पर जो आग्रह है उसकी भावना, अंगों या अंशों की अनेकता तथा विविधता पर व्यवस्था स्थापित करनेवाले सिद्धांत के रूप में की जा सकती है। यह व्यवस्था इन्हीं अंगों या अंशों की अनेकता तथा विविधता के बीच से प्रकट होती है।

यदि केवल एक ही सत्, शिव और सुंदर है और जब कि कोई वस्तु बिना एक हुए अस्तित्व ही नहीं प्राप्त कर सकती तो फिर संसार में विद्यमान अशिव तथा असुंदर की कैसे व्याख्या हो। नव-प्लेटोवाद (Neo-Platonism) के अनुसार अशिव या असुन्दर वस्तुत: स्वत: कुछ नहीं है किन्तु यह अपने को अभाव के रूप में प्रकट करता है अर्थात् उस वस्तु का अभाव जिसे कि वहाँ होना चाहिए। प्लाटिनस के अनुसार वस्तु (Matter) अनेकात्मकता है विश्रृंखलन तथा असत् का सिद्धांत, नकारात्मकता या अभाव जिसे कि वह परम 'एक' रूप और सत्ता प्रदान करता है। प्लाटिनस ने वस्तु (Matter) को रूपविहीनता का सिद्धान्त बना दिया। 'असुंदर वस्तु वह है जो पूर्णतया रूप द्वारा अर्थात् तर्क द्वारा वश में

---

१. " Where the Ideal Form has entered......it has rallied confusion into cooperation ; it has made the sum one harmonious coherence ; for the idea is a unity and what it molds must come to unity as far as multiplicity may.

And on what has thus been compacted to Unity, Beauty enthrones itself, giving itself to the parts as to the sum....Thus for an illustration, there is the beauty conferred by craftsmanship, of all a house with all its parts, and the beauty which some natural quality may give to a single stone."

(Literary Criticism. A Short History, W. K. Wimsalt J. R. & Cleanth ·: ooks, p. 114.)

नहीं की गई है, विचारात्मक रूप (Ideal Form) के प्रति सभी बातों में पूर्णतया समर्पण न करनेवाली वस्तु (Matter) है[1]।'

प्लाटिनस यद्यपि भौतिक सुन्दरता से विरत होने की बात करता है, उसको प्रतिकृति या नकल कहता है, फिर भी उसे सर्वथा निन्दनीय नहीं बताता। भौतिक सौन्दर्य से उस परम के सौन्दर्य का ध्यान प्राप्त करना चाहिए : 'जिसमें शक्ति है उसे अन्तर्मुखी हो जाना चाहिए, अपने में चला जाना चाहिए, उन सब वस्तुओं का त्याग करते हुए जो कि नेत्रों से जानी जाती हैं। भौतिक सुंदरता से सदा के लिए विरत होते हुए जो कि एक समय उसे आनंददायिनी थी। जब कि वह सौन्दर्य की उन भंगिमाओं को देखे जो कि शरीर में प्रकट होती हैं, उसे उनके पीछे न दौड़ना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि वे नकल हैं, आभास हैं, छाया हैं और उस (परम की) ओर जल्दी आगे बढ़ना चाहिए जिनके विषय में वह कह रही हैं[2]।'

'कौन ज्यामिति का ज्ञाता या गणितज्ञ प्रत्यक्ष वस्तुओं में लक्षित सारूप्य, (Symmetries) तादात्म्य और व्यवस्था के सिद्धान्तों में आनंद प्राप्त करने से वंचित रह सकता है। गोचर संसार में फैली हुई सुंदरता को देखता हुआ—इस विराट् व्यवस्था, अपनी दूरी के बीच भी जिस रूप को तारे प्रदर्शित करते हैं—निश्चय ही कोई ऐसा मूढ़ न होगा, ऐसा असंवेदनशील न होगा कि

---

१. " An ugly thing is something that has not been entirely mastered by pattern, that is by reason, the matter not yielding at all points and in all respects to Ideal Form ". (Ibid p. 115).

२. " He that has the strength, let him arise and withdraw into himself, foregoing all that is known by the eyes, turning away for ever from the material beauty that once made his joy. When he perceives those shapes of grace that show in body, let him not pursue : he must know them for copies, vestiges, shadows, and hasten away towards that they tell of ". (Ibid. P. 116).

जो इन सबके चिंतन में न लग जाय और विराट्ता से उद्भूत ऐसे महान् इन सबके विचार में पुज्य भाव से आक्रान्त न हो जाय[१]।'

इसी प्रकार प्लाटिनस कला को भी त्याज्य नहीं कहता और उसको उचित स्थान देता है। प्लाटिनस का कलाकार केवल दोहरी नकल—अनुकृति की अनुकृति—का स्रष्टा नहीं है जैसा कि वह प्लेटो की दृष्टि में है। उसे सामान्य से अधिक दैवी प्रकाश प्राप्त होता है। उसे दैवी बुद्धि से तादात्म्य प्राप्त होता है, उसे परम सत्ता की सुन्दर वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त होती है। "फिर भी कलाओं का इस कारण तिरस्कार न किया जाना चाहिए कि वे प्राकृतिक वस्तुओं के अनुकरण द्वारा सर्जन करती हैं। क्योंकि सबसे पहले ये प्राकृतिक वस्तुएँ स्वतः अनुकृति हैं। फिर हमें यह मानना चाहिए कि ये (कलाएँ) देखी हुई वस्तु की कोरी प्रतिकृति ही नहीं देतीं किन्तु उन विचारों (Ideas) तक जाती हैं, जिनसे कि प्रकृति (स्वतः) प्राप्त करती है और फिर यह कि उनका अधिक कार्य उनका अपना है। वे सौन्दर्य को ढालनेवाली हैं और वहाँ सौन्दर्य प्रदान करती हैं जहाँ कि प्रकृति में उसका अभाव होता है[२]।"

---

१. "What geometrician or arithmetician could fail to take pleasure in the symmetries, correspondences and principles of order observed in visible things ?......Surely no one seeing the loveliness lavish in the world of sense—this vast orderliness, the form which the stars even in their remoteness display—none could be so dull-witted, so immovable, as not to be carried by all this to recollection, and gripped by reverent awe in the thought of all this, so great, sprung from that greatness" (Ibid P. 117).

२. "Still the arts are not to be slighted on the ground that they create by imitation of natural objects ; for, to begin with, these natural objects are themselves imitations ; then we must recognize that they (the arts) give no bare reproduction of the thing seen but go back to the Ideal from which nature derives, and, further more, that much of their

इस प्रकार कला का दैवी से संबंध जुड़ जाता है और कला एक प्रकार से उस परम का प्रवेशद्वार बन जाती है। इस उद्गार के आधार पर विद्वान् प्लाटिनस को सर्जनात्मक कल्पना का प्रथम विचारक कहते हैं।

प्लाटिनस ने नैसर्गिक सौन्दर्य और कला-प्रदत्त सौन्दर्य की तुलना तथा भेद की व्याख्या भी की है:

"मान लीजिए कि दो पत्थर के टुकड़े बराबर पड़े हैं। एक में कोई शकल नहीं है, कला द्वारा बिल्कुल अछूता, दूसरा कलाकार के हाथों द्वारा बड़ी सूक्ष्मता से ईश्वर या आदमी या कला के देवता की मूर्ति रूप में खचित है, तस्वीर नहीं किन्तु ऐसी सर्जना जिसमें तत्क्षण की कला ने सारी सुन्दरता भर दी है।

अब यह अवश्य लक्षित करना चाहिए कि कलाकार के हाथों द्वारा रूप के सौन्दर्य को प्राप्त पत्थर, पत्थर के रूप में सुन्दर नहीं है—क्योंकि इस प्रकार तो अनगढ़ पत्थर भी उतना ही सुखद होगा—प्रत्युत कला द्वारा समाविष्ट रूप या विचार के कारण यह रूप वस्तु या उपादान (Matter) में नहीं है। यह पत्थर में प्रविष्ट होने के पहले कलाकार में है[१]।"

---

work is all their own, they are molders of beauty and add where nature is lacking." (Ibid p. 117).

१. "Suppose two blocks of stone lying side by side ; one is unpatterned, quite untouched by art ; the other has been minutely wrought by craftsman's hand into some statue of God or man, a Grace or a Muse, or if a human being, not a portrait but a creation in which the sculptor's art has concentrated all loveliness.

Now it must be seen that the stone thus brought under the artist's hand to the beauty of form is beautiful not as stone—for so the crude stone would be as pleasant—but in virtue of the form or idea introduced by art. This form is not in the material ; it is in the designer before it enters the stone." (Ibid 122).

पहले से विद्यमान पत्थर सत् है और उसका अपना रूप है, उसकी एकता है और सौन्दर्य है। किन्तु कला का सौन्दर्य उस सत् पर, रूपहीन उपादान पर या उस सरल अनगढ़ सामग्री या वस्तु (Matter) पर विचार की छाप है—छाप पर छाप या (प्राथमिक) रूप पर रूप।

प्लाटिनस के विचारों में कला, सौन्दर्य आदि के सिद्धान्तों को प्रदर्शित करते हुए यह न भूलना चाहिए कि प्लाटिनस की विचारधारा न सौन्दर्य-सिद्धान्त के रूप में और न कला-सिद्धान्त के रूप में शुरू होती है। प्लाटिनस का सिद्धान्त मुख्य रूप में और मूलतः ईश्वर तथा संसार, सत् और चेतना का सिद्धान्त है और केवल प्रासंगिक रूप में इसमें कला को स्थान मिला है। प्लाटिनस का विचारतंत्र उस दैवी या परम 'एक' की ओर ऊपर बढ़ता हुआ संसार की विविधता का अतिक्रमण कर जाता है और उस एकता या एक की प्रतिष्ठा करता है जिसकी भावना केवल नकारात्मकता के द्वारा की जा सकती है। संपूर्ण अस्तित्व के प्रकाश-स्रोत के धारणकर्ता के रूप में देवत्व या उस दैवी 'एक' पर आग्रह द्वारा नव-प्लेटोवाद और प्लाटिनस के दर्शन ने सौन्दर्य-शास्त्र में अपना योगदान दिया। इस देवत्व के संयोग के कारण ही क्रोचे ने कहा कि यह सिद्धान्त केवल सौन्दर्यवाद नहीं प्रत्युत उससे अधिक है—रहस्य-वादी आतिशय्य, आलोचना से परे असीम में आरोहण।

× × × ×

प्लाटिनस की विचारधारा प्लाटिनस के समय से लेकर मध्ययुग के अंतिम चरण तक, विशेषतया ईसाई दार्शनिकों के बीच, चलती रही। सेंट अगस्टाइन इससे भली भाँति परिचित था। सेंट अगस्टाइन से नौ सौ वर्ष बाद टामस अक्विनस ने ईसाई विचारधारा को प्रभावित किया और उसे एक मोड़ दिया। 'उसने विचारधारा को प्लेटोवीय रूपों के क्षेत्र से अरिस्टाटिलीय प्राकृतिक तथ्यों के अनुभव के संसार की ओर मोड़ दिया, फिर भी यह ऊपर की ओर अतीन्द्रिय तथ्यमूलक वैयक्तिक ईश्वर की ओर इंगित करने-वाला संसार था,...प्लाटिनस का बहिर्गत उद्भव का सिद्धान्त (Theory of Emanation), स्रष्टा तथा सृष्टि के बीच सतत क्रम का सिद्धान्त, मूल्यों का एक-दूसरे में मिलते जाना, अक्विनस के अरिस्टाटिलवाद में ईश्वर और

उसकी कृतियों के बीच स्पष्ट भेद तथा आग्रह द्वारा हटा दिया गया है। हमारा ईश्वर का परिज्ञान जो (ईश्वर) कि सुन्दर का स्रोत है किसी प्रकार के आध्यात्मिक या सूक्ष्म रंग या रंजन द्वारा नहीं उपलब्ध होता है, जैसे कि उदाहरणतः रंगमंच के अन्दर से झीने पर्दे के बीच से लक्षित प्रकाश का, प्रत्युत उस परम के हाथों की अलग-अलग कृतियों के स्पष्ट परिज्ञान या तर्क द्वारा प्राप्त होता है[१]।'

हमें अक्विनस या इसी प्रकार मध्ययुग के किसी भी धर्मशास्त्री की कृतियों में सौन्दर्य या कला का कोई स्पष्ट पूर्ण सिद्धान्त-कथन नहीं मिलता। अक्विनस की सौन्दर्य-संबंधी उक्तियों में हमें 'आध्यात्मिक नाम' के रूप में 'सौन्दर्य' की चर्चा मिलती है। 'सौन्दर्य रूप और बुद्धि (या ज्ञान) में होता है और इसलिए मुख्यतया चिंतनशील या मननशील जीवन में[२]।' उसका कथन है कि 'वे चीजें सुन्दर हैं जिनका परिज्ञान आनंद के साथ होता है[३]।' अक्विनस

---

१. " Thomas Aquinas turned the preoccupation of Christian metaphysics from the Platonic realm yonder of forms to an Aristotilian, immediately experienced world of natural substances. It was a world, however, which pointed upwards to a transcendentally substantive and personal God. The Plotinian theory of emanation, a theory of continuity between creator and created, a shading of values, is supplanted in the Christian Aristotilianism of Aquinas by an emphatic distinction between God and his works. Our apprehension of God, the source of the beautiful, is not by and kind of either spiritual or abstractive suffusion, as, for instance, of light from an inner stage seen through a gauze curtain, but by a clear apprehension of, and reasoning from, the separate works of His hand." (Ibid 126)

२. " Beauty belongs to form and intelligence, and hence preeminently to the contemplative life." (Ibid 127)

३. " Beautiful things, he says, are those which are apprehended with pleasure..". (Ibid. 127)

ने अपनी इस परिभाषा को अन्तर्मुखी मोड़ दे दिया, आत्मपक्ष (Subjective) से रंजित कर दिया। यहाँ हमें वह मूल विचार मिलता है कि ज्ञाता और ज्ञेय के बीच किसी न किसी प्रकार का तादात्म्य या सामंजस्य होता है, जिससे सौन्दर्य का परिज्ञान संपन्न होता है। किसी सुन्दर वस्तु का सौन्दर्य केवल वस्तुनिष्ठ स्वभाव में ही नहीं समाविष्ट रहता प्रत्युत जाननेवाले (ज्ञाता) के प्रति युक्तता के समानुरूप बाह्य संबंध में भी, ज्ञेयता के संबंध में भी। 'सारा ज्ञान, विशेषतया सुन्दर का ज्ञान और सुन्दर में आनन्द, व्यक्ति (Subject) और वस्तु (Matter) के बीच एक प्रकार की एकता द्वारा उद्भूत होता है[१]।'

सुन्दरता के लिए वस्तु में तीन गुण होने चाहिए : समग्रता या पूर्णता (Integritas sive Perfectio), उचित समानुपातिकता या सामंजस्य (Debita proportio sive consonantia) और दीप्ति या ओप (Claritas)। सामंजस्य से उसका तात्पर्य ऐसे सामंजस्य से है जो कि मूर्ति और उसकी मूर्तिमत्ता के बीच रहता है। सौन्दर्य की यह आवश्यकता पुत्र में मिलती है, क्योंकि पुत्र पिता की प्रतिमूर्ति है। प्राचीन युग की सौन्दर्य की जो दो कसौटियाँ सारूप्यता (Symmetry) तथा रंग की दीप्ति की थीं और जिन पर 'स्टोइक' दार्शनिकों ने विशेष जोर दिया था, इनमें से रंग की दीप्ति की कसौटी अक्विनस को विशेष मान्य है। अक्विनस का कथन है कि 'चमकदार शोख रंग वाले पदार्थ सुन्दर कहे जाते हैं।'[२] "अक्विनस में और उसी प्रकार उस शताब्दी के बहुसंख्यक धर्मशास्त्रीय तथा सौन्दर्यशास्त्रीय लेखकों में, विशेषतया 'फ्रांसिस्कनों' में हम प्रकाश के प्लेटवीय और प्लाटिनसीय दर्शन को और भी आभायुक्त पाते हैं और हमें इस संदर्भ में यह पढ़कर— जैसा कि हमने प्लेटो, प्लाटिनस तथा अगस्टाइन के संबंध में लक्षित किया—

१. "All knowledge, and especially knowledge of the beautiful, and pleasure in the beautiful, arise by a kind of union between subject and object." (Ibid. p. 127)

२. "Bright coloured objects" remarks Aquinas, "are said to be beautiful." (Ibid. p. 128)

आश्चर्य नहीं होता कि दृष्टि और श्रोत्र ऐसी इंद्रियाँ (Senses) हैं जो विशेषतया सौन्दर्याभिमुख होती हैं, क्योंकि वे मुख्यतया ज्ञानेन्द्रियाँ हैं[१]।"

अक्विनस की सौन्दर्य-चर्चा में सौन्दर्य न कला से संबंधित है और न उस पर आश्रित है। 'मध्ययुग में कला श्रेणीबद्धता में उपयुक्त रचना मात्र है—जो कुछ भी कोई बना रहा है उसे ठीक तरह से बनाना। चर्च गोशाला से अधिक कीमती किन्तु प्रत्येक अपने ढंग से ठीक और सुन्दर[२]।' इस श्रेणीबद्धता में धार्मिक कलाएँ सबसे ऊपर हैं। ऐसे विधान में ललित कलाओं जैसी कोई चीज नहीं होती।

इसी प्रकार काव्य की चर्चा न तो 'सौन्दर्य' के अन्तर्गत की गई और न 'कला' के अन्तर्गत ही। इसका कारण मुख्यतया वह मध्ययुगीन मनोदृष्टि है जिसने काव्य के अध्ययन को स्वतंत्र स्थान न देकर उसे काव्यशात्र (Rhetoric) या तर्क की शाखा बना दिया। अक्विनस ने उसे धर्म का आनुषंगिक बना दिया, क्योंकि दोनों ही तर्क से परे हैं।

'काव्यात्मक ज्ञान का संबंध उन वस्तुओं से है जिन्हें सत्यता की कमी के कारण तर्क द्वारा नहीं ग्रहण किया जा सकता। इसलिए तर्क को साम्य द्वारा

---

१. "In Aquinas, as in most of the theological and aesthetic writers of his century, and notably the Fransciscans, we find the Plotnian and Platonic philosophy of light more radiant than ever....And we are not surprised to read in this context, as we have read before in Plato. Plotinus and Augustine, that sight and hearing are the senses which preeminently open on beauty, because they are the preeminently intellectual senses." (Ibid. p. 128)

२. "Art in the Middle Ages is just the right way of making whatever anybody happens to be making (recta ratio factibilium)....in a hierarchy, a Cathedral being worth more than a cowshed, but each one right (and beautiful) in its own way." (Ibid. p. 130)

बहलाना पड़ता है। दूसरी ओर धर्म का संबंध उन वस्तुओं से है जो तर्क से ऊपर हैं। इसलिए दोनों प्रकार की बातचीत में प्रतीकात्मक पद्धति समान है। दोनों ही तर्क के अनुकूल नहीं हैं[१]।'

× × × ×

मध्ययुग में सबसे अनोखा व्यक्तित्व दान्ते अलिघियेरी का है। काव्य के क्षेत्र में उसकी कारयित्री प्रतिभा ने जो कुछ किया वह तो सर्वविदित है ही, समीक्षा-सिद्धान्त के क्षेत्र में उतना ही महत्त्वपूर्ण उसकी भावयित्री प्रतिभा का काम माना जाता है जो कि लोकभाषा (De Vulgari Eloquentia या De Vulgari Eloquio) के रूप में हमारे सामने है। यह ग्रंथ कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम यह लोकभाषा को साहित्यिक भाषा बनाने का समर्थन करता है—और इस प्रकार मध्ययुग में लैटिन के विरुद्ध लोकभाषा के आन्दोलन को बल देता है—और द्वितीय यह कि इसमें योरुप के सबसे महान् कवि का आलोचक-रूप प्रकट होता है। साहित्यिक भाषा बनने की उपयुक्तता की दृष्टि से दान्ते ने प्रचलित जनभाषाओं (Vulgar Tongue) की जो परीक्षा की है उसी सिलसिले में काव्य, भाव, भाषा, शैली, वस्तुविषय आदि के विषय में उसने जो कुछ कहा उसका आलोचना की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

दान्ते का कहना है कि जनभाषा (Vulgar Tongue) उदात्त या श्रेष्ठतर है, क्योंकि वह स्वाभाविक है, और जनभाषा वह है जिसे हम बिना किसी नियम के केवल अपने पालन-पोषण करनेवालों का अनुकरण कर प्राप्त करते हैं। एक और भाषा भी है जिसे कि रोमन व्याकरण (लैटिन) कहते थे, किन्तु इसकी प्राप्ति समय और साधना की अपेक्षा रखती है। लोकभाषा इससे उदात्ततर है, क्योंकि वह स्वाभाविक है।

---

१. "Poetic knowledge concerns matters which through a deficiency in their truth cannot be laid hold of by means of certain similitudes. Theology, on the other hand, deals with matters which are above reason. So the symbolic mode is common to both types of discourse ; neither type is suited to reasoning." (Ibid. p. 131)

इस ग्रंथ में जनभाषा और व्याकरण (या लैटिन या सुसंस्कृत भाषा) का पार्थक्यीकरण उस समय की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और जनभाषा को व्याकरण से श्रेष्ठतर ठहराना और भी सारगर्भित है। इसी प्रकार दान्ते अन्य देशों और उनकी जनभाषाओं की अच्छाइयों को मानता है। इससे कवि की उदार दृष्टि का पता लगता है।

दान्ते इस ग्रंथ में योरुप की भाषाओं का सर्वेक्षण करता है, कई जन-भाषाओं को साहित्यिक माध्यम बनने के अनुपयुक्त समझता है और फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इन सबमें केवल इतालीय भाषा ही 'आभायुक्त जन-भाषा' है। कवि के इस चुनाव का आधार वह कसौटी है जो इस पद पर आसीन होनेवाली भाषा को चार गुणों पर कसती है और जो चार गुण कवि को केवल इतालीय जनभाषा में ही मिलते हैं। ये गुण हैं—(१) आभा (Illustre), (२) मूल आधार, महत्ता (Cardinale), (३) दरबारी (Aulicum) और (४) न्यायालयीय (Curiale Vulgare in Latio)। दान्ते का कहना है कि इतालीय भाषा ने कूड़ा-करकट दूर फेंक दिया है। यह उनको ऊँचा उठाती है जो इसका अभ्यास करते हैं। इसलिए यह आभायुक्त (Illustrious) है। यह मूलाधार है या महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जिस प्रकार किवाड़ कुलाबों पर घूमते हैं उसी प्रकार बोलियों का समूह इसकी ओर उन्मुख होता है। यदि इतालियों का कोई दरबार होता तो यह दरबार में बोली जाती। इस प्रकार यह दरबारी है। इसी प्रकार यदि न्यायालय होते तो यह वहाँ बोली जाती और इसलिए यह न्यायालयीय है। इतालीय ऐसी ही भाषा है।

दान्ते का विचार है कि कविता में इसी 'आभायुक्त जनभाषा' (इतालीय) का प्रयोग होना चहिए। अच्छी चीजें अच्छी भाषा चाहती हैं। अच्छी आभा-युक्त भाषा अच्छे आभायुक्त लेखक, उत्तम भाव तथा उत्तम वस्तुविषयों की माँग करती है। इस आभायुक्त भाषा के लिए केवल तीन प्रकार के वस्तुविषय उपयुक्त हो सकते हैं: युद्ध (Salus), प्रेम (Venus) और नैतिक सौन्दर्य, जिसमें धर्म और दर्शन का संमिश्रण है। ये तीनों वस्तुविषय मनुष्य के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। काव्य के क्षेत्र में प्रेम को युद्ध तथा नीति के साथ सैद्धांतिक रूप से समानता का स्थान देकर और व्यवहार में सर्वोपरि बनाकर दान्ते

प्राचीनों से आगे बढ़ जाता है, क्योंकि प्राचीनों ने (काव्य में) प्रेम को ऊँचा स्थान नहीं दिया था ।

काव्य की परिभाषा (fictio rhetorician musica posita) देता हुआ कवि कविता के रूपों और शैली का विचार करता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि बैलेड, सॉनेट आदि काव्यरूपों में इस भाषा के लिए Canzone सर्वोत्तम होगा। Canzone करुण शैली (Tragic style) या उच्च शैली में लिखा जाना चाहिए। यह तभी संभव है जब कि अर्थ-गांभीर्य (Gravitas Senseutiae) के साथ पद-विन्यास या शब्द-सौन्दर्य का तादात्म्य हो। युद्ध, प्रेम, नैतिक सौन्दर्य अर्थ-गांभीर्य से युक्त होने चाहिए। कवि छंद के अक्षरों (Syllables), शैली या रचनाविधान और शब्द-सौंदर्य के संबंध में भी विचार करता है और उच्च रचनाविधान (Superbia, Carminum Constructiones elatio) और अर्थ-गांभीर्य (Gravitas Senseutiae) के साथ शब्द-सौष्ठव (Excellentia Volcabulorum) को काव्य के लिए आवश्यक बताता है।

इस प्रकार यह पुस्तक (De Vulgari Eloquio) केवल इसीलिए नहीं महत्त्वपूर्ण है कि यह एक ही व्यक्ति में महान् कवि और महान् आलोचक के सम्मिलन को प्रदर्शित करती है प्रत्युत इसका विवेचन भी अत्यंत मौलिक और स्वतंत्र है। यह मध्ययुग के उस रिहटोरिक (Rhetoric) से सर्वथा मुक्त है जिसका कि उस समय बड़ा चलन था और इसका लक्ष्य एक प्रकार से काव्यशास्त्र (Poetics) है। दान्ते इसमें तुलनात्मक समीक्षा के निकट आता है, जब कि वह योरुप की भाषा और बोलियों की काव्यसौष्ठव की दृष्टि से परीक्षा करता है। साथ ही यह पुस्तक यह भी प्रमाणित कर देती है कि दान्ते को केवल रूपवादी (Formalist) नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उसे वस्तुविषय और उसकी अभिव्यक्ति दोनों का बराबर ध्यान है।

मध्ययुग की इस समीक्षा-कृति का अत्यंत महत्त्व है। प्रसिद्ध आलोचक सेंट्सबरी इसे केवल मध्ययुग का ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ नहीं मानता प्रत्युत सभी समय के समीक्षात्मक ग्रंथों के बीच संमान का स्थान देता है[१]।

---

१. "For myself, I am prepared to claim for it, not merely

दान्ते की आलोचनात्मक मनोदृष्टि के परिचय का अन्य स्रोत वह पत्र है जिसके विषय में कहा जाता है कि उसे दान्ते ने अपने प्रबंधकाव्य (Divine Comedy) की परिचयात्मक व्याख्या के रूप में अपने संरक्षक कैन ग्रेंडी डेला स्काला (Can Grande Dellan Scala) को लिखा था। इसे व्याख्यात्मक आलोचना का रूप कहा जा सकता है।

दान्ते के अनुसार 'किसी भी शिक्षाकृति के आरम्भ में छः चीजों की जानकारी आवश्यक है—वस्तुविषय, रचयिता, रूप, उद्देश्य, शीर्षक और उसका दर्शन[१]।'

मध्ययुग की प्रतीकात्मक पद्धति का उस पर पूरा-पूरा प्रभाव है। उसका कहना है कि मेरे इस काव्य का अर्थ सरल नहीं प्रत्युत अनेकार्थक है। "प्रथम अर्थ तो वह है जो अक्षर (शब्द) के द्वारा प्राप्त होता है और दूसरा अक्षर (शब्द) द्वारा अभिव्यंजित वस्तुओं द्वारा। पहला अर्थ शाब्दिक कहा जाता है और दूसरा अन्योक्तिपरक, नैतिक या आध्यात्मिक। और यद्यपि ये रहस्यात्मक अर्थ कई नामों से अभिहित किए जा सकते हैं फिर भी यह सामान्यतया अन्योक्तिपरक (Allegorical) कहे जा सकते हैं क्योंकि ये शाब्दिक या ऐतिहासिक से भिन्न हैं। अन्योक्ति (Allegory) शब्द की निरुक्ति ग्रीक शब्द Alleon से होती है जो लैटिन में Alienum या भिन्न के रूप में प्रकट होता है[२]।

---

the position of the most critical document between Longinus and the seventeenth century at least, but one of intrinsic importance on a line with that of the very greatest critical documents of all history." (A History of Criticism and Literary Taste in Europe. George Saintsbury, Vol. I, p. 431.)

१. "There are six things to be inquired about at the beginning of any work of instruction, to wit the subject, the author, the form, the end, the title of the work, and the genus of its philosophy." (Literary Criticism, Plato to Dryden : Allan H. Gilbert, p. 202.)

२. "The first meaning is the one obtained through the letter; the second is the one obtained through the things

जब वस्तुविषय कई अर्थों से संबंधित होता है तो उसे (वस्तुविषय) दोहरा होना चाहिए। इसलिए इस कृति के वस्तुविषय को अभिधात्मक तथा प्रतीकात्मक दोनों दृष्टियों से देखना चाहिए। अभिधात्मक दृष्टि से इस काव्य का वस्तुविषय मृत्यु के बाद आत्मा की दशा है और प्रतीकात्मक अर्थ मनुष्य है जो अपने इच्छा-स्वातंत्र्य के कारण पुरस्कार और दण्ड भोगता है।

मध्ययुग में प्रतीकात्मकता का बड़ा जोर था। यह कहा जा चुका है कि किस प्रकार मध्ययुग में काव्य के स्वरूप को ही प्रतीकात्मक माना जाने लगा था और वर्जिल की रचनाओं का प्रतीकात्मक अर्थ प्रस्तुत किया जाने लगा था। दान्ते द्वारा काव्य के प्रतीकात्मक पक्ष का विशेष उद्घोष युग के इसी प्रभाव की सूचना दे रहा है। दान्ते ने विषय के साथ उसके रूप (Form) का भी विचार किया है।

वस्तुविषय के समान इस काव्य का रूप (Form) भी दोहरा है—कृति का रूप (Form) तथा चित्रण का रूप। कृति का रूप तेहरा है। चित्रण का रूप काव्यात्मक, कथात्मक, विवरणात्मक, सम्भावित, असम्भावित आदि है।

इसके बाद शीर्षक पर विचार करते हुए उसका कहना है कि इस पुस्तक का शीर्षक है 'स्वभाव से नहीं, किन्तु जाति से फ्लोरेन्टाइन दान्ते अलिघियेरी का सुखान्त (Comedy) काव्य।' उसका कहना है कि कमेडी (Comedy) Comos (गाँव) और Oda (गीत) से बना है जिसका अर्थ है ग्रामीणों का गीत। Comedy काव्यानुकरण का एक प्रकार है जो दूसरों से भिन्न है। यह ट्रेजेडी (Tragedy—करुण) से भिन्न है, क्योंकि ट्रेजेडी आरम्भ में

---

signified by the letter. The first is called literal, the second allegorical, or moral or anagogical. And though these mystic senses may be called by various names, they can all be generally spoken of as allegorical, since they are diverse from the literal or historical. For allegory is derived from alleon in Greek, which in Latin appears as alienum, or diverse." (Ibid.)

देखने में अच्छी और शांत होती है किन्तु उसका अंत दुर्गन्धमय या भयानक होता है । ट्रेजेडी (Tragedy) Tragos (बकरी) और Oda (गीत) से बनी है, जिसका अर्थ है बकरी का-सा गीत या बकरी के समान दुर्गन्धमय । कमेडी (Comedy—सुखान्त) आरम्भ में किसी घटना के कठोर पक्ष से संबंधित रहती है किन्तु इसका अन्त सुखमय होता है । चूँकि इस कृति का आरम्भ भयानक है, क्योंकि इसका आरम्भ नरक से होता है और चूँकि इसका अन्त आकर्षक और सुखद है, क्योंकि इसका अंत स्वर्ग में होता है इससे यह कृति कमेडी (Comedy) कही गई ।

यहाँ यह लक्षित करना अप्रासंगिक न होगा कि मध्ययुग तक आते-आते लोगों के सामने 'ट्रेजेडी' और 'कमेडी' के नाटकीय रूप की स्पष्टता बहुत कुछ लुप्त हो चुकी थी । फलतः 'ट्रेजेडी' तथा 'कमेडी' मध्ययुग में नाट्यरूपविहीन अभिनव काव्यरूप में व्यवहृत और प्रचलित हुए । नाटक न होते हुए भी इसी से दान्ते ने इस काव्य को 'कमेडी' (Comedy) कहा ।

अपने काव्य के उद्देश्य के संबंध में दान्ते जो कुछ कहता है उसमें उसके युग की नैतिक मनोदृष्टि ही प्रतिबिम्बित हो रही है । उसका कहना है कि "इस काव्य के अंश तथा पूर्ण का उद्देश्य लोगों को दुःख-दशा से हटाकर सुख-दशा की ओर ले जाना है[१] ।" फलतः दान्ते के इस काव्य में धार्मिकता और नैतिकता की छाप स्पष्ट है ।

उपोद्घात (Prologue) के संबंध में दान्ते ने जो कुछ कहा है उसमें दैवी प्रेरणा या स्फुरण का सिद्धान्त भी अप्रत्यक्ष रूप से ध्वनित होता है । उसका कहना है कि उपोद्घात का उपयोग कवियों तथा वक्ताओं द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में होता है । "वक्ता तो इसमें सुननेवालों की भावना को तत्पर करने के लिए कुछ शब्द जोड़ देते हैं, किन्तु कवि केवल इतना ही नहीं करते अपितु इसके बाद वे मंगलाचरण या आवाहन भी करते हैं और यह उनके लिए ठीक है, क्योंकि उन्हें मंगलाचरण या आवाहन की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि दैवी

---

१. " ... the end of the whole and the part is to remove those living in this life from a state of misery and to lead them to a state of happiness." (Ibid p. 205)

उपहार के रूप में उच्च विभूतियों से, मनुष्यों में प्रचलित जीवन-रीति से विपरीत की आकांक्षा की जानी चाहिए। इसी से प्रस्तुत उपोद्घात दो भागों में विभाजित है, क्योंकि पहले में जो कुछ कहना है उसका समावेश है और दूसरे में अपोलो (Apollo) का आवाहन है[१]।"

कथा के मुख्य भाग के संबंध में दान्ते का कथन है कि मैं व्याख्या के रूप में इसके अतिरिक्त कुछ न कहूँगा कि प्रत्येक स्थल पर एक स्वर्ग से दूसरे में आरोहण की पद्धति होगी और प्रत्येक क्षेत्र में आशीर्वादप्राप्त (Blessed) आत्माओं के विषय में कुछ कहा जायगा और यह कि सच्चा सौन्दर्य सत्य के दर्शन में है और जब कि आरम्भ या प्रथम वस्तु अर्थात् ईश्वर प्राप्त हो गया तो उसके परे कोई चीज प्राप्त करने को नहीं रह जाती, क्योंकि वही आरम्भ और अन्त है। इसी से (इस कृति का) चित्रण ईश्वर में ही समाप्त होता है जो कि अनन्त आनंद का संसार है।

कुछ विद्वानों का यह विचार है कि दान्ते के इस पत्र की पद्धति और विचार उन लोगों के हैं जो शास्त्रीय (Scholastic) पद्धति के अनुसार अरिस्टाटिल का अनुगमन कर रहे थे। यह पत्र यद्यपि बहुत-सी बातों पर प्रकाश डालता है फिर भी इससे इस काव्य की महत्ता का कुछ भी आभास नहीं होता। दान्ते का सारा ध्यान विचार और नैतिकता की युगानुकूल शैली तथा व्याख्या में लगा रहता है और इस कृति की कलात्मक विशेषताओं या सौन्दर्य के विषय में कवि कुछ नहीं कहता। एक आलोचक का कहना है कि "हमारा

---

१. "....For the orators have agreed to prefix some words to prepare the spirit of the auditor ; but the poets not merely do this, but after it they utter a certain invocation. And this is proper for them, since they have great need of an invocation, because something contrary to the way of life common among men is to be sought from the superior beings, as a sort of divine gift. Hence the present prologue is divided into two parts, since in the first what is to be said is introduced, and in the second Apollo is to be invoked." (Ibid 205)

एतराज इस बात पर नहीं होना चाहिए कि (इस काव्य की दान्ते द्वारा दी गई) आलोचना सच्ची नहीं है प्रत्युत इस बात पर कि वह उन सबका बहुत कम समावेश करती है जिन्हें कि हम काव्य में देखते हैं[१]।"

फिर भी इसका यह तात्पर्य नहीं कि दान्ते को काव्य की कलात्मक विशेषताओं का ध्यान नहीं था। Convivio में एक स्थल पर उसके काव्य सिद्धान्त की झलक मिल जाती है:

"....इसलिए मैं अब कहता हूँ कि (प्रत्येक प्रबन्ध का) शिवत्व और सौन्दर्य एक-दूसरे से भिन्न और अलग है। प्रबन्ध का शिवत्व उसके विचार में है और उसका सौन्दर्य उसके शब्दों की सजावट में है। दोनों ही आनन्दप्रद हैं। चूंकि Canzone के शिवत्व को लक्षित करना कठिन था, क्योंकि विभिन्न व्यक्ति इसमें बोलते हैं और बहुत-सी विशिष्टताएँ ढूँढ़ी जाती हैं और इसके सौन्दर्य को लक्षित करना सरल था, मुझे यह अनिवार्य लगा कि लोग सामान्यता इस (Canzone) के सौन्दर्य पर उसके शिवत्व की अपेक्षा अधिक ध्यान देंगे[२]।"

यह द्वैतवाद दान्ते के काव्य-सिद्धान्त का आधार है जिसमें एक ओर भाव है और दूसरी ओर सुसज्जित भाषा है। भाव तथा भाषा का तादात्म्य ही काव्य की सबसे बड़ी समस्या है, जिसका समाधान विषयानुरूप शैली

---

१. "Our objection must be not that the criticism is untrue, but that it covers so little of what we see in the poem." (Ibid, 200).

२. "....Therefore I say at present that the goodness and the beauty of every composition are distinct and separate from each other. Its goodness is in its idea and its beauty in the adornment of its words ; both of them are delightful. Therefore, because the goodness of the canzone was hard to see because of diverse persons that came forward to speak in it and the many distinctions sought for, and its beauty was easy to see, it seemed to me inevitable that people would generally give more attention to the beauty than to the goodness of this canzone." (Ibid. 201).

तथा स्फुरणा के सिद्धान्त (Theory of Inspiration) (जिसका कि अप्रत्यक्ष संकेत दान्ते के पत्र में है) में मिलता है। कवि का भाव तथा नैतिकता पर विशेष आग्रह यह स्पष्ट प्रदर्शित कर देता है कि वह कला के क्षेत्र में कोरे सौन्दर्यवादियों से बहुत दूर है।

सर्जनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिभा का ऐसा मेल, जिसने कि एक ओर ऐसे महान् काव्य की सर्जना की और दूसरी ओर काव्य के उपकरण और प्रक्रिया—भाव, भाषा, रूप, शैली आदि—का विश्लेषण प्रस्तुत किया सचमुच अद्वितीय है। दान्ते केवल उच्च काव्य लिखकर ही संतुष्ट नहीं होना चाहता था प्रत्युत चिन्तक के रूप में यह भी जानना चाहता था कि उत्तम काव्य कैसे बनता है, किसमें निहित है, तथा किसमें उसकी शक्ति और उसका सौंदर्य है। दान्ते-जैसा समन्वित और अपूर्व व्यक्तित्व सारे मध्ययुग में दूसरा नहीं दिखाई देता। सेंट्सबरी का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि हमें उस (दान्ते) के समान अन्य नहीं दिखाई देगा। रि्हटोरिक (Rhetoric) आदि पर दो-चार अप्रत्यक्ष आलोचनात्मक उद्गार तो मिल जाएँगे किन्तु सम्यक् आलोचना या काव्यकौशल के रहस्यों तथा साहित्य के मुग्धकारी स्वभाव की ऐसी छानबीन और व्याख्या नहीं या नहीं के बराबर ही मिलेगी।

× × × ×

मध्ययुग की उपलब्धियों और सीमाओं की चर्चा करते हुए सेंट्सबरी ने जो कुछ कहा है वह मनन के योग्य है और उसमें थोड़े में मध्ययुग की पूरी तस्वीर झलक रही है—

"विश्वास के युग के रूप में प्रशंसित तथा तिरस्कृत यह (युग) वास्तव में तर्कपूर्ण दलील और क्रीड़ाशील अर्ध अविश्वास का मेल था। घृणा के साथ 'अज्ञान के युग' के रूप में माना जानेवाला यह युग जो कुछ भी जानता था उसे पूरी तरह जानता था और यह कतिपय अन्य (युगों) के सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता। केवल तैयारी के युग के रूप में संरक्षित इस (युग) ने वह उपलब्ध कर लिया जिसके लिए हम पाँच सौ साल से असफल प्रयत्न कर रहे ह। हमें यह फौरन स्वीकार कर लेना चाहिए कि मध्ययुग और चाहे जो कुछ

रहा हो वह निश्चय ही आलोचना का युग नहीं था। वह इस प्रकार का (अर्थात् आलोचनात्मक) हो ही नहीं सकता था। यदि वह युग ऐसा कुछ करता तो उसका सारा कारबार ही नष्ट हो जाता।...विजयिनी मौलिकता जिसने कि व्यवहार में प्रेम-प्रबंधों (Romance) का सर्जन किया, नाटक में क्रांतिकारी परिवर्तन किया, इतिहास को बदल दिया, नए प्रगीत (Lyric) को निर्मित किया वह सिद्धान्तवादिता के समक्ष संकुचित और पक्षाघात से पीड़ित हो जाती और किसी समय हम 'आलोचनात्मक स्कूल' (School Rhetoric) की त्रुटियों के लिए इतने कृतज्ञ न होते (जितने कि इस समय हैं) क्योंकि यदि उसकी दशा अच्छी होती तो उससे (मौलिक सर्जना की) बहुत बड़ी हानि हो जाती[१]।"

मध्ययुग की संप्राप्तियों का एक और मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता है, जो सेंट्सबरी के मूल्यांकन का समर्थन ही करता है और उसको और भी परिवर्द्धित कर रहा है--

---

१. "Abused and extolled as 'Ages of Faith' they were really ages of a mixture of logical argument and playful half scepticism. Regarded with scorn as 'Ages of Ignorance', they knew what they did thoroughly which is more than can be said of some others..... patronised as Ages of mere preparation, they accomplished things that we have toiled after in vain for some five hundred years,...... let me acknowledge atonce that whatsoever the Middle Ages were or were not, they were certainly not Ages of Criticism. They could not have been anything of the kind; it would have ruined their business and choked their vocation if they had attempted to be so.....the triumphant originality which, in practice, created the Romance, revolutionised the Drama, altered History, devised a fresh Lyric, would have been constrained and paralysed in the face of theory."

(A History of Criticism, G. Saintsbury, Vol. I, pp. 372-373.)

"अन्त में हमें कहना है कि मध्ययुग वस्तुतः सैद्धांतिक साहित्यिक समालोचना का युग नहीं था । यह वास्तव में साहित्यिक सर्जना का युग था जब लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के प्रेम-प्रबंध और प्रगीत उत्पन्न हुए, जब नाटक का पुनर्जन्म हुआ, जब कथा, व्यंग्य, परी की कहानियाँ, अन्योक्ति (Allegory) तथा आख्यान अनेक रूपों में पुष्पित-पल्लवित हुए और (इस प्रकार) भविष्य की समृद्ध आलोचना की भूमि तैयार हुई। किन्तु इस युग में सैद्धांतिक विचारणा की गतिविधि दूसरी ओर थी——दार्शनिकता की ओर, क्योंकि यह धार्मिक चिन्तन की ओर ले जाती है या 'धर्मशास्त्रीय अभिव्यक्ति' (Scriptural Revelation) से समन्वित हो जाती है। संक्षेप में यह धर्माभिमुख धार्मिक समाज के धार्मिक चिन्तन का युग था। ऐसा समाज स्वभावतया साहित्यिक समालोचना की मूलतः मानवीय या सांस्कृतिक क्रिया को प्रोत्साहित नहीं करता...[१] ।"

---

१. "Let us say, in summation, that the Middle Ages ..... were not in fact ages of literary theory or criticism. They were Ages, indeed of great literary creativity, when romance and lyric of both secular and religious love were born, when drama was reborn, when fable, satire, fairy tale, allegory and narrative in a dozen other forms flourished, enriching the ground for a luxuriant future criticism. But the direction of theoretical thinking in these ages was elsewhere .... to the metaphysical, as that leads to speculative theology or joins with scriptural revelation. In short it was an age of theological thinking in a theologically oriented and theocratic society. Such a society does not characteristically promote the essentially humanistic activity of literary criticism ..."

(Literary Criticism : A Short History. William K. Wimsalt, J. R. & Cleanth Brooks, pp. 154.)